

# जैन धर्म दर्शन

(भाग - 2)



प्रकाशक : आदिनाथ जैन ट्रस्ट, चूना, चेन्नई

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

[www.jainlibrary.org](http://www.jainlibrary.org)

# जैन धर्म दर्शन

## (भाग - 2)

मार्गदर्शक : डॉ. सागरमलजी जैन  
प्राणी मित्र श्री कुमारपालभाई वी. शाह  
संकलनकर्ता : डॉ. निर्मला जैन

\* प्रकाशक \*  
आदिनाथ जैन ट्रस्ट  
चूलै, चेन्नई

## जैन धर्म दर्शन भाग -2

प्रथम संस्करण : मार्च 2011

प्रतियाँ : 4000

प्रकाशक एवं परीक्षा फॉर्म प्राप्ति स्थल

### आदिनाथ जैन ट्रस्ट

21, वी.वी. कोईल स्ट्रीट,

चूलै, चेन्नई- 600 112.

फोन : 044-2669 1616, 2532 2223

मुद्रक

### नवकार प्रिंटर्स

9, ट्रिवेलियन बेसिन स्ट्रीट

साहुकारपेट, चेन्नई - 600079.

फोन : 25292233 • 98400 98686

\* प्रस्तुत प्रकाशन के अर्थ सहयोगी \*

श्रीमती स्नेहलता हस्तीमलजी सुराणा



श्रीमती पदम राजेन्द्रकुमारजी मेहता

# अनुक्रमणिका

|  |    |
|--|----|
| हमारी बात                              | 1  |
| आदिनाथ सेवा संस्थान के संक्षिप्त विवरण | 2  |
| अनुमोदन के हस्ताक्षर                   | 3  |
| प्राक्कथन                              | 4  |
| प्रकाशकीय                              | 5  |
| <b>1 जैन इतिहास</b>                    |    |
| श्री पार्श्वनाथ भगवान का जीवन चरित्र   | 7  |
| श्री शांतिनाथ भगवान का जीवन चरित्र     | 15 |
| श्री अरिष्टनेमि भगवान का जीवन चरित्र   | 21 |
| <b>2 जैन तत्त्व मीमांसा</b>            |    |
| अजीव तत्त्व                            | 31 |
| पुण्य तत्त्व                           | 38 |
| पाप तत्त्व                             | 41 |
| आश्रव तत्त्व                           | 48 |
| <b>3 जैन आचार मीमांसा</b>              |    |
| मार्गानुसारी जीवन                      | 55 |
| <b>4 जैन कर्म मीमांसा</b>              |    |
| ज्ञानावरणीय कर्म                       | 64 |
| दर्शनावरणीय कर्म                       | 66 |
| वेदनीय कर्म                            | 69 |
| <b>5 सूत्रार्थ</b>                     |    |
| इरियावहियं (प्रतिक्रमण) सूत्र          | 75 |
| तस्स उत्तरी सूत्र                      | 78 |
| अत्रत्थ सूत्र                          | 78 |
| लोगस्स (चतुर्विंशतिस्तव) सूत्र         | 82 |
| करेमि भंते (सामायिक सूत्र)             | 84 |

|   |  |     |
|---|--|-----|
|   | भयवं ! दसण्ण भद्दो (सामायिक तथा पौषध पारणे का पाठ) सूत्र | 85  |
|   | एयस्स नवमस्स (सामायिक पारणे का पाठ)                      | 86  |
|   | सामाइय वय जुत्तो (सामायिक पारणा) सूत्र                   | 87  |
| 6 | <b>महापुरुष की जीवन कथाएं</b>                            |     |
|   | ढंढणमुनि   | 91  |
|   | साध्वी पुष्पचूला   | 93  |
|   | सम्राट संप्रति   | 95  |
|   | महासती द्रौपदी   | 97  |
|   | संदर्भ सूची  | 101 |
|   | परिक्षा के नियम  | 102 |

## हमारी बात

दि. 5.7.1979 के मंगल दिवस पर चूलै जिनालय में भगवान आदिनाथ के प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर स्व. श्री अमरचंदजी कोचर द्वारा स्थापित श्री आदिनाथ जैन मंडल अपनी सामाजिक गतिविधियों को आदिनाथ जैन ट्रस्ट के नाम से पिछले 31 वर्षों से प्रभु महावीर के बताये मार्ग पर निरंतर प्रभु भक्ति, जीवदया, अनुकंपा, मानवसेवा, साधर्मिक भक्ति आदि जिनशासन के सेवा कार्यों को करता आ रहा है। ट्रस्ट के कार्यों को सुचारु एवं स्थायी रूप देने के लिए सन् 2001 में चूलै मेन बाजार में (पोस्ट ऑफिस के पास) में 2800 वर्ग फुट की भूमि पर बने त्रिमंजिला भवन 'आदिनाथ जैन सेवा केन्द्र' की स्थापना की गई। भवन के परिसर में प्रेम व करुणा के प्रतीक भगवान महावीर स्वामी की दर्शनीय मूर्ति की स्थापना करने के साथ करीब 7 लाख लोगों की विभिन्न सेवाएँ की जिसमें करीब 1 लाख लोगों को शाकाहारी बनाने का अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ है।

### आदिनाथ जैन सेवा केन्द्र में स्थाई रूप से हो रहे निःशुल्क सेवा कार्यों की एक झलक :

- \* 10 विकलांग शिविरों का आयोजन करने के पश्चात अब स्थायी रूप से विकलांग कृत्रिम लिंब सहायता केन्द्र की स्थापना जिसमें प्रतिदिन आने वाले विकलांगों को निःशुल्क कृत्रिम पैर, कृत्रिम हाथ, कैलिपरस्, क्लचेज, व्हील चैर, ट्राई - साईकिल आदि देने की व्यवस्था।
- \* आंखों से लाचार लोगों की अंधेरी दुनिया को फिर से जगमगाने के लिए एक स्थायी फ्री आई क्लिनिक की व्यवस्था जिसमें निःशुल्क आंखों का चेकअप, आंखों का ऑपरेशन, नैत्रदान, चशमों का वितरण आदि।
- \* करीबन 100 साधर्मिक परिवारों को प्रतिमाह निःशुल्क अनाज वितरण एवं जरूरतमंद भाईयों के उचित व्यवसाय की व्यवस्था।
- \* बहनों के लिए स्थायी रूप से निःशुल्क सिलाई एवं कसीदा ट्रेनिंग क्लासस एवं बाद में उनके उचित व्यवसाय की व्यवस्था।
- \* आम जनता की स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु एक फ्री जनरल क्लिनिक जिसमें हर रोज 50 से ज्यादा मरीजों का निशुल्क चेकअप, दवाई वितरण।
- \* प्रतिदिन करीब 200 असहाय गरीब लोगों को निशुल्क या मात्र 3 रुपयों में शुद्ध सात्विक भोजन की व्यवस्था।
- \* दिमागी रूप से अस्थिर दुःखियों के लिए प्रतिदिन निःशुल्क भोजन।
- \* निःशुल्क एक्यूंपंक्चर, एक्यूंप्रेशर, फिसियोथेरेपी एवं नेच्युरोथेरेपी क्लिनिक
- \* जरूरतमंद विद्यार्थियों को निःशुल्क स्कूल फीस, पुस्तकें एवं पोशाक वितरण।
- \* रोज योगा एवं ध्यान शिक्षा।
- \* जैनेलॉजी में बी.ए. एवं एम.ए. कोर्स।
- \* आपातकालीन अवसर में 6 घंटों के अंदर राहत सामग्री पहुंचाने की अद्भुत व्यवस्था।
- \* स्पोकन ईंगलिश क्लास।

# आदिनाथ जिनशासन सेवा संस्थान में होने वाली सम्भवित योजनाओं का संक्षिप्त विवरण

हाल ही में हमारे ट्रस्ट ने चूलै के मालू भवन के पास 8000 वर्ग फुट का विशाल भुखंड खरीदकर 'आदिनाथ जिनशासन सेवा संस्थान' के नाम से निम्न शासन सेवा के कार्य करने का दृढ संकल्प करता है।

## \* विशाल ज्ञानशाला

- \* जैन धर्म के उच्च हितकारी सिद्धांतों के प्रचार - प्रसार के लिए आवासीय पाठशाला...
- \* जिसमें श्रद्धावान मुमुक्षु, अध्यापक, विधिकारक, मंदिर सेवक (पुजारी), संगीतकार, पर्युषण आराधक इत्यादि तैयार किए जाएंगे।
- \* निरंतर 24 घंटे पिपासु साधर्मिकों की ज्ञान सुधा शांत करने उपलब्ध होंगे समर्पित पंडितव्य व अनेक गहन व गंभीर पुस्तकों से भरा पुस्तकालय।
- \* बालक - बालिकाओं व युवानों को प्रेरित व पुरस्कारित कर धर्म मार्ग में जोड़ने का हार्दिक प्रयास।
- \* जैनोलॉजी में बी.ए., एम.ए. व पी.एच.डी. का प्रावधान।

## \* साधु-साध्वीजी भगवंत वैयावच्च

- \* जिनशासन को समर्पित साधु-साध्वी भगवंत एवं श्रावकों के वृद्ध अवस्था या बिमारी में जीवन पर्यंत उनके सेवा भक्ति का लाभ लिया जाएगा।
- \* साधु-साध्वी भगवंत के उपयोग निर्दोष उपकरण भंडार की व्यवस्था।
- \* ज्ञान-ध्यान में सहयोग।
- \* ऑपरेशन आदि बड़ी बिमारी में वैयावच्च।

## \* वर्षीतप पारणा व आयंबिल खाता

- \* विश्व को आश्चर्य चकित करदे ऐसे महान तप के तपस्वीयसों के तप में सहयोगी बनने सैंकड़ों तपस्वियों के शाता हेतु सामूहिक वर्षीतप (बियासणा), 500 आयंबिल तप व्यवस्था व आयंबिल खाता प्रारंभ हो चुका है।

## \* धर्मशाला

- \* चिकित्सा, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य एवं व्यापार आदि हेतु दूर - सुदूर देशों से पधारने वाले भाईयों के लिए उत्तम अस्थाई प्रवास व भोजन व्यवस्था।

## \* शुद्ध सात्विक जैन भोजनशाला

- \* किसी भी धर्म प्रेमी को प्रतिकूलता, बिमारी या अन्तराय के समय शुद्ध भोजन की चिंता न रहे इस उद्देश्य से बाहर गाँव व चेन्नई के स्वधर्मी भाईयों के लिए उत्तम, सात्विक व स्वास्थ्य वर्धक जिनआज्ञामय शुद्ध भोजन की व्यवस्था।

## \* साधर्मिक स्वावलम्बी

- \* हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाली शुद्ध सात्विक एवं जैन विधिवत् रूप से तैयार की गई वस्तुओं की एक जगह उपलब्धि कराना, साधर्मिक परिवारों द्वारा तैयार की गई वस्तुएँ खरीदकर उन्हें स्वावलम्बी बनाना एवं स्वधर्मीयों को गृहउद्योग के लिए प्रेरित कर सहयोग करना इत्यादि।

## \* जैनोलॉजी कोर्स Certificate & Diploma Degree in Jainology

- \* जैन सिद्धांतों एवं तत्वज्ञान को जन - जन तक पहुँचाने का प्रयास, दूर - सुदूर छोटे गाँवों में जहाँ गुरु भगवंत न पहुँच पाये ऐसे जैनों को पुनः धर्म से जोड़ने हेतु 6 - 6 महीने के Correspondence Course तैयार किया गये हैं। हर 6 महीने में परीक्षा के पूर्व त्रिदिवसीय शिविर द्वारा सम्यक् ज्ञान की ज्योति जगाने का कार्य शुभारंभ हो चुका है।

## \* जीवदया प्राणी प्रेम प्रकल्प योजना

- \* मानव सेवा के साथ - साथ मूक जानवरों के प्रति प्रेम व अनुकम्पा का भाव मात्र जिनशासन सिखलाता है। जिनशासन के मूलाधार अहिंसा एवं प्रेम को कार्यान्वित करने निर्माण होंगे 500 कबुतर घर व उनके दाना-पानी सुरक्षा आदि की संपूर्ण व्यवस्था।

मोहन जैन

सचिव आदिनाथ जैन ट्रस्ट



# अनुमोदन के हस्ताक्षर

कुमारपाल वी.शाह

कलिकुंड, ढोलका

जैन दर्शन धर्म समस्त विश्व का, विश्व के लिए और विश्व के स्वरूप को बताने वाला दर्शन है। जैन दर्शन एवं कला बहुत बहुत प्राचीन है। जैन धर्म श्रमण संस्कृति की अद्भूत फुलवारी है इसमें ज्ञान योग, कर्म योग, अध्यात्म और भक्ति योग के फूल महक रहे हैं।

परमात्म प्रधान, परलोक प्रधान और परोपकार प्रधान जैन धर्म में नये युग के अनुरूप, चेतना प्राप्त कराने की संपूर्ण क्षमता भरी है। क्योंकि जैन दर्शन के प्रवर्तक सर्वदर्शी, सर्वज्ञ वितराग देवाधिदेव थे।

जैन दर्शन ने “यथास्थिस्थितार्थ वादि च...” संसार का वास्तविक स्वरूप बताया है। सर्वज्ञ द्वारा प्रवर्तित होने से सिद्धांतों में संपूर्ण प्रमाणिकता, वस्तु स्वरूप का स्पष्ट निरूपण, अरिहंतो से गणधर और गणधरों से आचार्यों तक विचारो की एकरूपता पूर्वक की उपदेश परंपरा हमारी आन बान और शान है।

संपूर्ण विश्व के कल्याण हेतु बहुत व्यापक चिंतन प्रस्तुत कराने वाला जैन दर्शन सर्वकालिन तत्कालिन और वर्तमान कालिन हुई समस्याओं का समाधान करता है, इसीलिए जैन दर्शन कभी के लिए नहीं ~~अभी अभी के लिए है।~~

यहाँ जैन धर्म दर्शन के व्यापक स्वरूप में से आंशीक और आवश्यक तत्वज्ञान एवं आचरण पक्ष को **डॉ. कुमारी निर्मलाबेन** ने स्पष्ट मगर सरलता से प्रस्तुत किया है। स्वाध्यायप्रिय सबके लिए अनमोल सोगात, आभूषण है। बहन **निर्मला** का यह प्रयास वंदनीय है।

ध्यान में रहे इसी पुस्तक का स्वाध्याय ज्ञान के मंदिर में प्रवेश करने का मुख्य द्वार है।

\*\*\*



## प्राक्कथन

प्रस्तुत कृति की रचना जन सामान्य को जैन धर्म दर्शन का बोध कराने के उद्देश्य से की गई है। इस पुस्तक में जैन धर्म दर्शन को निम्न छः खण्डों में विभाजित किया गया है। 1. जैन इतिहास 2. तत्त्व मीमांसा 3. आचार मीमांसा 4. कर्म मीमांसा 5. धार्मिक क्रियाओं से संबंधित सूत्र एवं उनके अर्थ और 6. धार्मिक महापुरुषों की जीवन कथाएँ।

प्रत्येक अध्याय को जैन धर्म का समग्र रूप से अध्ययन हो इस हेतु यह परियोजना प्रारंभ की गई है। पूर्व में इस योजना के प्रथम वर्ष के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर विषयों का संकलन कर पुस्तक का प्रकाशन किया गया था। इसके इतिहास खण्ड में जहाँ प्रथम वर्ष में भगवान महवीर स्वामी का जीवनवृत्त दिया गया था, वहाँ इस वर्ष में भगवान पार्श्वनाथ, भगवान शांतीनाथ, भगवान अरिष्टनेमी की जीवनगाथाओं को अतिविस्तार से प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय तत्त्व मीमांसा खण्ड, प्रथम खण्ड में जहाँ जीव तत्त्व का विस्तार से विवेचन हुआ था वहाँ इस खण्ड में अजीव, पुण्य, पाप और आश्रव तत्त्व का विस्तार से विवेचन किया गया है। इसी प्रकार तीसरे आचार शास्त्र सम्बंधी खण्ड में जहाँ सप्त व्यसन और उनसे विमुक्ति के उपायों की चर्चा की गयी थी। वहाँ इस खण्ड में मार्गानुसारी गुणों का विवेचन किया गया है। इसी क्रम में कर्म मीमांसा में जहाँ पूर्व खण्ड में कर्म सिद्धांत के सामान्य मान्यताओं की चर्चा हुई थी वहाँ इस खण्ड में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और वेदनीय कर्म का विस्तार से विवेचन किया गया है। धार्मिक क्रियाओं के संबंध में पूर्व में नमस्कार महामंत्र और गुरुवंदन के सूत्र दिये गये थे वहाँ इस विभाग में सामायिक की साधना के कुछ सूत्र प्रस्तुत किये गये हैं और उनका अर्थ देकर उन्हें स्पष्ट समझाया गया है। जहाँ तक धार्मिक महापुरुषों की गाथाओं का प्रश्न है इस द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में निम्न महापुरुषों की कथाएँ दी गई है जैसे ढंढणमुनि, साध्वी पुष्पचूला, सम्राट संप्रति, द्रौपदी।

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में पूर्व प्रथम भाग में जैन धर्म दर्शन संबंधी जो जानकारीयाँ थी, उनका अग्रिम विकास करते हुए नवीन विषयों को समझाया गया है। फिर भी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें जो विकासोन्मुख क्रम अपनाया गया है वह निश्चित ही जन सामान्य को जैन धर्म के क्षेत्र में अग्रिम जानकारी देने में रुचिकर भी बना रहेगा। प्रथम खण्ड का प्रकाशन सचित्र रूप से जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है उसी प्रकार यह खण्ड की जन साधारण के लिए एक आकर्षक बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। कृति प्रणयन में डॉ. निर्मला बरडिया जो श्रम और आदिनाथ ट्रस्ट के आयोजकों का जो सहयोग रहा है वह निश्चित ही सराहनीय है। आदिनाथ ट्रस्ट जैन विद्या के विकास के लिए जो कार्य कर रहा है, और उसमें जन सामान्य जो रुचि ले रहे हैं, वह निश्चिन्त ही अनुमोदनीय है। मैं इस पाठ्यक्रम की भूरि भूरि अनुमोदना करता हूँ

**डॉ. सागरमल जैन**

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

## प्रकाशकीय

वर्तमान समय में जीव के कल्याण हेतु “जिन आगम” प्रमुख साधन है। जीवन की सफलता का आधार सम्यक जीवन में वृद्धि तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। जहाँ सम्यक् ज्ञान है वहाँ शांति है, आनंद है और जहाँ अज्ञान है वहाँ आर्तध्यान है। परम पुण्योदय से मनुष्य जन्म एवं जिनशासन प्राप्त होने पर भी अध्ययन करने वाले अधिकतर विद्यार्थियों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा न मिलने के कारण आज के युग में प्रचलित भौतिकवादी ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा मानव बुद्धि को तृष्णा, ईर्ष्या, असंतोष, विषय - विलास आदि तामसिक भावों को बढ़ावा दिया हैं। ऐसे जड़ विज्ञान भौतिक वातावरण तथा विलासी जीवन की विषमता का निवारण करने के लिए सन्मार्ग सेवन तथा तत्त्वज्ञान की परम आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से यह त्रिवर्षीय पत्राचार द्वारा पाठ्यक्रम (Certificate & Diploma Course) हमारे ट्रस्ट द्वारा शुरु किया गया हैं। ताकि प्रभु महावीर की वाणी घर बैठे जन - जन तक पहुँच सकें, नई पीढ़ी धर्म के सन्मुख होवे तथा साथ में वे लोग भी लाभान्वित हो जहाँ दूर - सुदूर, छोटे - छोटे गाँवों में साधु-साध्वी भगवंत न पहुंच पाये, गुरुदेवों के विचरन के अभाव में ज्ञान प्राप्ति से दूर हो रहे हो।

“जैन धर्म दर्शन” के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है, जिसमें भाग 1 से 6 तक प्रति 6-6 महीने में प्रस्तुत किये जाएंगे।

इस पुस्तक के पठन - पाठन से पाठकगण जैन इतिहास, तत्त्वमीमांसा, आचार मीमांसा, कर्म मीमांसा सूत्रार्थ - महापुरुषों के जीवन कथाओं के विषय पर विशेष ज्ञान प्राप्त कर मन की मलिनताओं को दूर कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है। इस पुस्तक की समाप्ति पर इसके वर्णित पदार्थों की शास्त्रानुसारिता को प्रमाणिक करने के लिए आ. श्री अरुणोदयसागरसूरीश्वरजी म.सा., मुनिराज श्री मोक्षरतिविजयजी म.सा., साध्वीजी श्री हेमप्रज्ञाश्रीजी म.सा., सा. श्री विरतीप्रभाश्रीजी म.सा., डॉ. सागरमलजी जैन एवं प्राणी मित्र श्री कुमारपाल भाई वी. शाह आदि ने निरीक्षण किया है। उस कारण बहुत सी भाषाएं भूलों में सुधार एवं पदार्थ की सचोष्टता आ सकी है। अन्य कई महात्माओं का भी मार्गदर्शन मिला है। उन सबके प्रति कृतज्ञयभाव व्यक्त करते हैं। पुस्तक की प्रुफरीडिंग के कार्य में श्री मोहनजैन, श्रीमती अरुणा कानुगा एवं श्रीमती नीतू वैद का भी योगदान रहा है।

आशा है आप हमारे इस प्रयास को आंतरिक उल्लास, उर्जा एवं उमंग से बधाएं और प्रेम, प्रेरणा, प्रोत्साहन से अपने भीतर के आत्म विश्वास को बढ़ाएं।

अंत में इस नम्र प्रयास के दौरान कोई भी जिनाज्ञा विरुद्ध कथन हुआ हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

डॉ. निर्मला जैन



# \* जैन इतिहास \*

- \* श्री पार्श्वनाथ भगवान का जीवन चरित्र
- \* श्री अरिष्टनेमि भगवान का जीवन चरित्र
- \* श्री शांतिनाथ भगवान का जीवन चरित्र



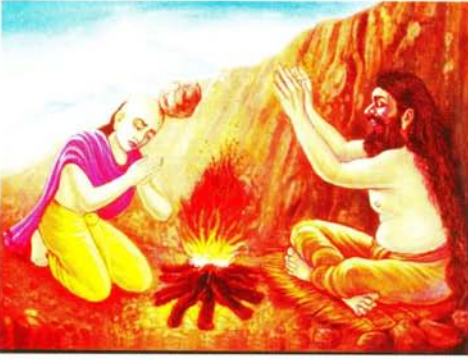
## भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ईसा पूर्व नवीं - दशवीं शताब्दी की घटना है । भगवान महावीर के निर्वाण से 250 वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ।

### \* भगवान पार्श्वनाथ के दस भव \*

\* पहला भव :- इस जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नामक नगर था, वहाँ अरविंद राजा राज्य करता था, उसके विश्वभूमि नाम का एक पुरोहित था, राजपुरोहित के दो पुत्र थे - कमठ और मरुभूति।

माता - पिता के गुजर जाने पर राजा ने कमठ को पुरोहित पद प्रदान किया, यह स्वभाव से कठोर, क्रूर, लम्पट और शठ था, इधर मरुभूमि प्रकृति का सरल, धर्मज्ञ और श्रावकाचार पालन करने वाला था, कमठ के वरुणा नाम की पत्नी थी और मरुभूति की अत्यंत रूपवती वसुंधरा नाम की पत्नी थी।



मरुभूति की अनुपस्थिति में कमठ ने उसकी पत्नी वसुंधरा से प्रेम संबंध जोड़ लिया । मरुभूति को इस बात का पता चला तो उसने राजा से शिकायत की । राजा ने कमठ को अपमानित कर देश से निकाल दिया। अपमानित कमठ ने मरुभूति के प्रति क्रोध की गाँठ बांध ली और वह जंगल में जाकर संन्यासी वेश में रहने लगा। एक समय कमठ पोतनपुर के पास एक पर्वत पर आकर आतापना करने लगा। मरुभूति ने विचार किया कि यह मेरा बड़ा भाई है, मेरे सख्त विरोध से दुःख के कारण तापस हो गया है, अतः मैं उससे नमन पूर्वक क्षमा मांग

लू, यह सोच कर मरुभूति ने एकान्त में पैरों में पडकर क्षमा मांगी, इसके बदले उस दुष्ट कमठ ने अपने अनुज (छोटे भाई) पर मारने के लिए एक शिला उठाई, और उसपर फेंकी, जिससे मरुभूति का सिर फट गया व पीड़ा से व्याकुल हो चटपटाने लगा और आर्तध्यान में मर गया ।

\* दूसरा भव :- मरुभूति का जीव विन्ध्याचल की अटवी में सुजातोरु नाम का हाथी हुआ, कमठ मरकर इसी वन में कुर्कुट पक्षी के समान आकृति वाला उड़ता सर्प हुआ, इधर अरविंद राजा ने कमठ - मरुभूति का स्वरूप जानकर संसार की असारता समझ दीक्षा अंगीकार कर ली। अरविंद राजर्षि एकान्त सरोवर की पाल पर जाकर काउसगग ध्यान में खड़े थे, उस वक्त सुजातोरु हाथी अपनी हथिनियों के परिवार सहित वहाँ पर जल पीने आया । मुनि को निहार कर पहले तो हाथी उन्हें मारने के लिए झपटा, पर दूसरे ही क्षण वह विचारने लगा कि यह तो पूर्व परिचित सा लगता है। उस ही वक्त उसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, अपना पूर्व भव जाना। हाथी ने सूँड पसार कर चरणों में नमस्कार किया, मुनि महाराज ने भी अपने ज्ञान से मरुभूति का जीव जान कर उसको प्रतिबोध दिया । हाथी ने श्रावक



व्रत अंगीकार किया। एक वक्त वह हाथी कीचड में ऐसा फंस गया कि न तो आगे जा सकता था, न पीछे हट सकता था। उस समय वह कुर्कुट सर्प भी वहाँ आ पहुँचा, पूर्व भव के वैर से उस हाथी को डंसा, धर्मध्यान में परायण वह हाथी श्रावक व्रत पालता हुआ प्राणान्त हो गया।

✽ **तीसरा भव** :- तीसरे भव में मरुभूति का जीव सहस्रार नामक आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ और कमठ का जीव सर्प दावानल में मरकर पाँचवी नरक में उत्पन्न हुआ ।।

✽ **चौथा भव** :- चौथे भव में देवलोक से च्यवनकर मरुभूति का जीव इस जम्बूद्वीप के महाविदेह में सुकच्छ विजय के वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में तिलकवती नगरी के अधिपति विद्युतगति नृप की पत्नी कनकवती की कुक्षि में पुत्रपुत्रे उत्पन्न हुआ, किरणवेग नाम रखा गया, अनुक्रम से युवा अवस्था में राज्य पालता हुआ और स्वरूप शालिनी ललनाओं के साथ वैषयिक क्रीडा करता हुआ एक वक्त महल के गोख में बैठा हुआ था, संध्या का रंग देखकर वैराग्यवान् हो गया मुनि महाराज के पास दीक्षा लेकर पुष्कर द्वीप में वैताढ्य पर्वत के पास हेमशैल पर्वत के ऊपर काउसग ध्यान रहा, उस असे में कमठ का जीव नरक से निकल कर उसी पर्वत पर सर्प हुआ, उसने उन साधु महाराज को देखा, पूर्व वैर वश होकर उनको डंसा, महात्मा काल कर गये ।

✽ **पाँचवा भव** :- पाँचवे भव में मरुभूति का जीव अच्युत नाम बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ, कमठ का जीव सर्प योनि से मरकर पाँचवी नरक में उत्पन्न हुआ।

✽ **छट्टा भव** :- छठे भव में मरुभूति का जीव देवलोक से च्यवनकर इस ही जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में गंधलावती विजय की शुभंकरा नगरी के अंदर वज्रवीर्य राजा की लक्ष्मीवती रानी के कुक्षि में पुत्र वज्रनाभ के रूप में उत्पन्न हुआ। क्रमशः पिता के दिये हुए राज्य को और विषय सुखों को भोगता हुआ आनंद से रहता था, एक समय उद्यान में क्षेमंकर तीर्थकर पधारें, वज्रनाभ प्रभु के दर्शनार्थ गया, देशना श्रवण से सर्व अनित्य जानकर पुत्र को राज्य सौंप दिया और तीर्थकर के पास दीक्षा ग्रहण करली, सर्व आचार - विचार, शास्त्र - सिद्धांत का अध्ययन कर चरण - लब्धि से विचरते हुए सुकच्छ विजय मध्यवर्ती ज्वलंत नामक पर्वत पर काउसग ध्यान में रहे - कमठ का जीव नरक से निकलकर बहुत भव भ्रमण कर इसी पर्वत पर भील बना, शिकार के निमित्त जाते हुए उसने उन साधु को देखा, पूर्व वैरवश होकर एक ही बाण से उनके प्राण ले लिए ।

✽ **सातवाँ भव** :- सातवें भव में मरुभूति का जीव मध्य त्रैवेयक देव बना, कमठ का जीव सातवीं नरक में गया ।

✽ **आठवाँ भव** :- आठवें भव में मरुभूति का जीव इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में शुभंकर विजय के पुराणपुर नगर के अंदर कुशलबाहु भूपति की रानी सुदर्शना के गर्भ से उत्पन्न हुआ, माता ने चौदह स्वप्न देखें, उसका नाम सुवर्णबाहु रखा गया, यौवन काल में पिताजी ने पुत्र को राज्य दे दिया, उसने छः खण्ड साधकर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। राज्य सुखों का अनुभव कर वृद्धावस्था में चारित्र ग्रहण किया, बीस स्थानक की आराधना कर तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन किया। एक



समय मुनि वन में काउसगग ध्यान कर रहे थे उस वक्त कमठ का जीव नरक से निकलकर सिंह हुआ। सुवर्णबाहु राजर्षि को देखा, वैर वशात् क्रोधातुर होकर एक छलांग मारी और मुनि को पकडकर चीर दिया। मुनि वहीं काल कर दिये।

\* **नवमाँ भव** :- नवमें भव में मरुभूति का जीव प्राणत नाम के दसमें देवलोक में बीस सागरोपम की आयुष्यवाला देव हुआ और कमठ का जीव सिंह मरकर चौथी नरक दस सागरोपम की आयुष्य वाला नारकी हुआ।

\* **दसमाँ भव** :- दसवें भव में मरुभूति का जीव देवलोक से च्यवन कर महारानी वामादेवी की रत्नकुक्षि में अवतरे और कमठ के जीव ने एक दरिद्र ब्राह्मण के घर में जन्म लिया।

### \* च्यवन कल्याणक \*



आर्हत् पार्श्वनाथ तीन ज्ञान सहित प्राणत देवलोक से च्यवनकर चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन राजा अश्वसेन की महारानी वामादेवी के कुक्षि में पधारें। भगवान का गर्भ स्थापित होने के बाद माता वामारानी मध्य रात्रि में 1. गज 2. वृषभ 3. सिंह 4. लक्ष्मी देवी 5. पुष्पमाला 6. चंद्र 7. सूर्य 8. ध्वजा 9. पूर्णकलश 10. पद्म सरोवर 11. क्षीर समुद्र 12. देव विमान 13. रत्नों की राशी 14. निर्धूम अग्नि चौदह महास्वप्नों को देखती है, इन्द्रादि देवों ने च्यवन कल्याणक मनाया।

### \* जन्म कल्याणक \*

गर्भकाल पुरा होने पर पौष कृष्ण दशमी की मध्यरात्री में वाराणसी के राजा अश्वसेन की महारानी वामादेवी की कुक्षि से भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ।

### \* जन्म कल्याणक का उत्सव (दिक्कुमारिकोत्सव) \*

शाश्वतनियमानुसार जन्म के पुण्य - प्रभाव से प्रसूति - कार्य की अधिकारिणी 56 दिक्कुमारिका देवियों के सिंहासन डोलने पर विशिष्ट ज्ञान से भगवान के जन्मप्रसंग को जानकर अपना कर्तव्य पालन करने के लिए वे देवियां जन्म की रात्री में ही देवी शक्ति से शीघ्र ही जन्मस्थान पर आती हैं और भगवान तथा उनकी माता को नमस्कार करके भव्य कदलीगृहों में दोनों की स्नान, विलेपन, वस्त्रालंकार - धारण आदि से भक्ति करके भगवान के गुणगानादि कर शीघ्र विदा होती है।



## \* इन्द्र का मेरुपर्वत पर प्रतिगमन \*



जन्म के समय सौधर्म देवलोक के शक्र इन्द्र अवधिज्ञान द्वारा भगवान के जन्म को जानकर सत्वर वहीं रहते हुए दर्शन - वंदन और स्तुति करते हैं, तत् पश्चात तीर्थकरों के जन्माभिषेक का उत्सव मेरुपर्वत पर जाकर स्वयं के द्वारा आयोजित करने की दृष्टि से देवलोक के अन्य देव - देवियों को अपने साथ उत्सव में पधारने का आमंत्रण देते हैं, आमंत्रण को भाव से स्वीकार कर असंख्य देव - देवियां भी तथा तिरसठ इन्द्र मेरु पर्वत पर पहुंचते हैं, जब कि शक्रेन्द्र जन्म की रात्रि में ही सीधे पृथ्वी पर आकर वामाराणी के शयनागार में

जाकर, माता सहित भगवान को नमस्कार करते हैं और अवस्वापिनी नामक दैविक शक्ति से उन्हें निद्राधीन करके आज्ञानुसार भक्ति का पूरा लाभ लेने के लिए शीघ्र अपने ही शरीर के वैक्रियलब्धि - शक्ति से पांच रूप बनाकर एक रूप से दोनों हाथ में भगवान को लेकर, अन्य रूपों से छत्र - चामर और वज्र धारण करके जम्बूद्वीप के केन्द्र में विराजमान नन्दनवन तथा जिनमन्दिरों से सुशोभित मेरु पर्वत पर ले जाते हैं।

## \* मेरु पर्वत पर जन्म कल्याणक का उत्सव (स्नात्राभिषेकोत्सव) \*

शक्रेन्द्र मेरु पर्वत पर भगवान को लाकर स्वयं पर्वत के शिखर पर स्थित एवं पांडुक शिला पर बैठकर भगवान को अपनी गोद में विराजमान करते हैं। उस समय परमात्मा की भक्तिपूर्वक आत्मकल्याण के इच्छुक शेष 63 इन्द्र तथा असंख्य देव - देवियां एकत्र होते हैं। इन्द्र अभिषेक के लिए पवित्र तीर्थस्थलों की मृत्तिका तथा नदी - समुद्रों के सुगंधित औषधियों से मिश्रित जल के सुवर्ण चांदी और रत्नों के हजारों कलश तैयार कराने के पश्चात् इन्द्र का आदेश मिलने पर इन्द्रादिक देव - देवियां अपूर्व उत्साह और आनंद के साथ कलशों को हाथ में लेकर, भगवान का स्नानाभिषेक करते हैं। अंत में शक्रेन्द्र स्वयं अभिषेक करता है। तदनन्तर भगवान के पवित्र देह को चन्दनादि सुगंधित द्रव्य से विलेपन कर आरती - दीपक उतारकर अष्टमंडलों का आलेखन करते हैं। अन्य देव तथा देवियां भगवान की स्तुति और गीत - नृत्यों के द्वारा आनंद व्यक्त करती हैं। फिर प्रातःकाल से पूर्व ही भगवान को वामादेवी के शयनागार में लाकर पास में सुला देते हैं और देवगण अपने स्थान पर चले जाते हैं। यह जन्म महोत्सव उसी रात्रि में ही मना लिया जाता है।





## \* नामकरण \*



श्री पार्ष्व - प्रभु गर्भ में आने के पश्चात् रात के अंधकार में भी महारानी वामादेवी ने अपने पार्ष्व से (बगल से) जाते हुए एक सर्प को देखा था। गर्भ का प्रभाव मानकर माता-पिता ने पुत्र का नाम पार्ष्व रखा।

## \* विवाह \*

पार्ष्वकुमार युवास्था प्राप्त होने पर कुशस्थलपुर के राजा श्री प्रसेनजित की राज कन्या प्रभावती के साथ विवाह किया।



## \* नाग का उद्धार \*

एक दिन पार्ष्वकुमार ने देखा कि नगर की जनता पूजा - अर्चना की सामग्री लेकर नगर के बाहर जा रही है। पूछने पर पता चला कि कोई कमठ नाम का तापस नगर के बाहर पंचाम्नि तप कर रहा है। उसी को देखने के लिए झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं।



कमठ का नाम सुनते ही कुमार ने जान लिया “ यह

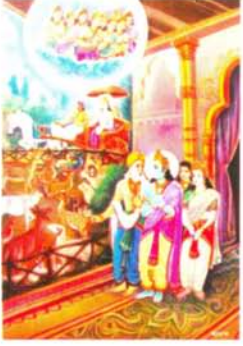


वही कमठ है, और यहाँ पर भी अज्ञान और पाखण्ड फैलाकर धर्म भीरु जनता को हिंसात्मक यज्ञ तथा अज्ञान तप के अंधकार में धकेल रहा है।” कुमार अपने अनुचरों को साथ लेकर तापस की धूनी के पास पहुँचे। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ “अहा ! राजकुमार पार्ष्व भी तापस के दर्शन के लिए आए हैं?” उनके पीछे भीड़ जमा हो गई। कुमार तापस के नजदीक पहुँचकर बोले “ हे कमठ तापस ! आप यह अज्ञान तप करके स्वयं को व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हैं, साथ ही यज्ञ-कुण्ड की लकड़ियों में पंचेन्द्रिय जीव - नाग जल रहा है, उसकी हिंसा भी कर रहे हैं” कुमार की बातें सुनकर तापस आग बबूला हो उठा - कुमार ! आप क्या जाने धर्म को, यज्ञ को, तप को ? क्यों व्यर्थ ही आप हमारे यज्ञ और तप में विघ्न डाल रहे हैं ?

पार्ष्वकुमार ने कहा - “धर्म और तप का मूल दया है। आपके यज्ञ - कुण्ड में तो एक नाग - युगल जल रहा है” तापस ने क्रुद्ध होकर कहा - “

यह असत्य है " तब पार्श्वकुमार ने अपने अनुचरों को आदेश दिया । यज्ञ-कुण्ड की जलती लकड़ियों को हटाकर धीरे से चीरा गया तो उसमें से अधजला एक नाग - युगल (जोडा) निकला जो पीडा से तड़प रहा था । पार्श्वकुमार ने तत्काल उन्हें नमस्कार महामंत्र सुनवाया, अरिहंत सिद्ध का शरण दिलाया । शुभ भावों के साथ प्राण त्यागकर वह नागजाति के भवनवासी देवों का इन्द्र - धरणेन्द्र बना व धरणेन्द्र की रानी पद्मावती हुई।

इस प्रसंग से जनता में कमठ तापस की प्रतिष्ठा खत्म हो गई। वह क्रुद्ध होकर अज्ञान तप करता रहा । मरकर असुर कुमारों में मेघमाली देव हुआ।

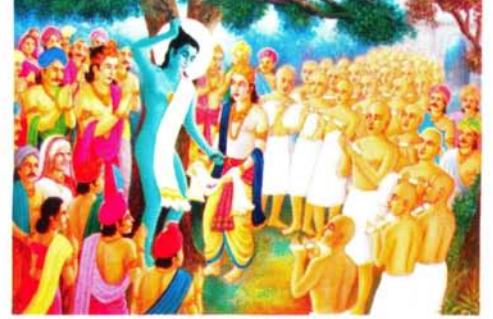


### ※ वैराग्य ※

एक वक्त पार्श्वकुमार सारे दिन क्रीडा कर संध्या के समय अपने आवास में आये, वहाँ दीवार पर नेमिकुमार का समग्र वृत्तान्त लिखा हुआ था कि विवाह के लिए सब यादवों के साथ तोरण के पास आये, पशुओं की पुकार सुनकर उनको बाड़े में से छुड़ाये, राजीमती का त्याग किया, गिरनार शैल पर दीक्षा अंगीकार की, इत्यादि पढकर वैराग्यवान् हुए, इतने ही में अपने आचारानुसार नौ लोकान्तिक देव आकर प्रभु को प्रव्रज्या के सन्मुख किये, पार्श्वप्रभु अब साम्वत्सरिक दान देने लगे।

### ※ दीक्षा कल्याणक ※

शीतकाल में पौष कृष्णा एकादशी के दिन मध्यान्ह समय विशाला नामकी पालखी में विराजकर भगवान बनारसी नगरी के बीचोबीच होकर आश्रमपद नामक उद्यान में पधारते हैं, वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे सर्व आभूषण शरीर से उतारकर अट्टम तप करके अपने हाथ से पंचमुष्टि लोच किया, तदन्तर नमो "सिद्धाणं" शब्द से सिद्धों को नमस्कार करके "करेमि सामाइयं" इस प्रतिज्ञा सूत्र का पाठ बोलकर इन्द्र का दिया हुआ एक देवदूष्य वस्त्र कन्धे पर धारण कर 300 राजपुरुषों के साथ



दीक्षा अंगीकार की। उसी

समय भगवान को "मनःपर्यव" नामक चतुर्थ ज्ञान प्राप्त हुआ।

### ※ उपसर्ग ※

एक बार प्रभु पार्श्वनाथ वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान में लीन थे । उस समय मेघमाली असुरदेव उधर से निकला। प्रभु पार्श्व को ध्यानस्थ देखकर पूर्व- भव का वैर जाग गया । उसने भगवान को ध्यान से विचलित करने के लिए अनेक प्रकार के उपसर्ग किये । सिंह, हाथी, चीता, दृष्टिविष, सर्प, बीभत्स, वैताल आदि रूप बनाकर ध्यान भंग करने के प्रयत्न किये, परंतु प्रभु ध्यान में पर्वतराज की भांति अविचल खडे रहे। तब मेघमाली असुर ने क्रुद्ध होकर मूसलाधारवर्षा प्रारंभ की । देखते ही देखते गर्दन तक पानी चढ गया।

तभी धरणेन्द्र देव का आसन कंपित हुआ। वह अपने उपकारी प्रभु पार्श्वनाथ की सेवा के लिए पद्मावती देवी के साथ तुरंत प्रभु के पास पहुँचा। उसने अपने सात फनों का छत्र बनाया और शरीर की कुण्डली बनाकर कमलासन बना दिया। भगवान उस कमलासन पर जल के ऊपर राजहंस की तरह समाधिस्थ खड़े रहे। धरणेन्द्र देव ने दुष्ट मेघमाली को डाँटा और प्रभु के क्षमामय / करुणामय स्वरूप का दर्शन कराया। मेघमाली ने भयभीत होकर भगवान के चरणों में क्षमा मांगी।

### ※ केवलज्ञान कल्याणक ※



आत्म भावना भाते हुए 83 दिन व्यतीत होने पर उष्णकाल में चैत्र वदी चौथ के दिन मध्याह्न काल में धातकी वृक्ष के नीचे बिराजे हुए चौविहार छद्म तप सहित विशाखा नक्षत्र में शुक्ल ध्यान ध्याते हुए भगवान को सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान - केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उसी स्थान पर देवताओं ने समवसरण की रचना की। भगवान ने धर्म के स्वरूप पर प्रथम प्रवचन दिया। हिंसा त्याग, असत्य त्याग, चौर्य त्याग तथा परिग्रह त्याग रूप चातुर्यामिधर्म द्वारा आत्मसाधना का मार्ग दिखाया।

### ※ तीर्थ स्थापना ※

भगवान की देशना सुनकर राजा अश्वसेन (पिता) भी संसार से विरक्त हुए और माता महारानी वामादेवी, रानी प्रभावती आदि को भी वैराग्य जगा। सभी ने प्रभु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। उस समय के प्रसिद्ध वेदवाठी विद्वान शुभदत्त आदि अनेकों विद्वानों एवं राजकुमारों आदि ने भी भगवान की देशना से प्रबुद्ध होकर दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने श्रावक - श्राविका, साधु - साध्वी रूप चार तीर्थ की स्थापना की। शुभदत्त प्रथम गणधर बने। भगवान पार्श्वनाथ के धर्मतीर्थ में कुल 8 गणधर हुए। कालांतर में पार्श्वप्रभु के 108 नाम प्रसिद्ध हुए हैं।



### ※ निर्वाण कल्याणक ※

श्री पार्श्वनाथ पुरुषादानीय 30 वर्ष तक गृहस्थावास में रहे, 83 दिन छद्मस्थ अवस्था में चारित्र पाला, 69 वर्ष 9 मास, 7 दिन केवल्य पर्याय पाली, कुल 70 वर्ष चारित्र पाल कर एक सौ (100) वर्ष की आयु पूर्ण कर 1. वेदनीय 2. आयुष्य 3. नाम 4. गौत्र इन चार अघातक कर्मों का विध्वंस कर इस अवसर्पिणी में चौथे आरे के 253 वर्ष 8 मास 15 दिन शेष रहने पर वर्षाकाल में श्रावण सुदि आठम के दिन सम्मत् शिखर पर्वत पर 33 साधुओं के साथ चौविहार मासक्षमण कर विशाखा नक्षत्र में चंद्रयोग के प्राप्त होने पर मध्याह्न समय खड़े काउसग ध्यान में पार्श्वनाथ स्वामी मोक्ष पधारे।



\* भगवान की शिष्य संपदा \*

|                        |            |            |            |
|------------------------|------------|------------|------------|
| गणधर                   | - 8        | साधु       | - 16,000   |
| साध्वी                 | - 38,000   | श्रावक     | - 1,64,000 |
| श्राविका               | - 3,27,000 | चौदहपूर्वी | - 350      |
| अवधिज्ञानी             | - 1400     | केवलज्ञानी | - 1,000    |
| वैक्रिय लब्धिधर        | - 1,100    | विपुलमति   | - 750      |
| ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञानी | - 600      | वादी       | - 600      |

\* एक झलक \*

|                    |                             |                   |
|--------------------|-----------------------------|-------------------|
| माता - वामा        | पिता - अश्वसेन              | नगरी - वाराणसी    |
| वंश - इक्ष्वाकु    | गौत्र - काश्यप              | लंछन - सर्प       |
| वर्ण - नील         | शरीर ऊँचाई - 9 हाथ          | यक्ष - पार्श्व    |
| यक्षिणी - पद्मावती | कुमारकाल - 30 वर्ष          | राज्यकाल - नहीं   |
| छद्मस्थकाल - 83    | कुल दीक्षा पर्याय - 70 वर्ष | आयुष्य - 100 वर्ष |

\* पंच कल्याणक \*

|           | तिथि            | स्थान      | नक्षत्र |
|-----------|-----------------|------------|---------|
| च्यवन     | चैत्रकृष्णा 4   | प्राणत     | विशाखा  |
| जन्म      | पौषकृष्णा 10    | वाराणसी    | विशाखा  |
| दीक्षा    | पौष कृष्णा 11   | वाराणसी    | विशाखा  |
| केवलज्ञान | चैत्रकृष्णा 4   | वाराणसी    | विशाखा  |
| निर्वाण   | श्रावण शुक्ला 8 | सम्मेतशिखर | विशाखा  |

## \* 16वें तीर्थकर भगवान श्री शांतीनाथ का पूर्व भवों का वर्णन \*

|        |                 |                                       |
|--------|-----------------|---------------------------------------|
| पहला   | - राजा श्रीषेण  | रत्नपुर (जंबुद्वीप - भरत क्षेत्र)     |
| दूसरा  | - यौगलिक        | उत्तर कुरू (जंबुद्वीप)                |
| तीसरा  | - देव           | सौधर्म प्रथम देवलोक                   |
| चौथा   | - राजा अमिततेज  | रथनुपुर (वैताढ्य गिरी - उत्तर श्रेणी) |
| पाँचवा | - देव           | प्राणत (दसवाँ) देवलोक                 |
| छठा    | - बलदेव अपराजित | शुभा (जंबुद्वीप महाविदेह)             |
| सातवाँ | - इन्द्र        | अच्युत (बारहवाँ) देवलोक               |
| आठवाँ  | - वज्रायुध      | रत्नसंचया (जंबु द्वीप - महाविदेह)     |
| नौवां  | - अहमिन्द्र     | तीसरा गैवेयक                          |

### दसवाँ भव

जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह की पुष्कलावती विजय में पुंडरीकिणी नगरी थी। वहाँ धनरथ राजा राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ प्रियमति व मनोरमा थी। वज्रायुद्ध के जीव ने तीसरे ग्रैवेयक का आयुष्य पूरा कर प्रियमति की कुक्षि से जन्म लिया। नाम रखा गया मेघरथ। मनोरमा से उत्पन्न पुत्र का नाम दृढरथ रखा गया। जब दोनों योवनवस्था को प्राप्त हुए तब उनका विवाह सुमंदिरपुर के महाराज निहतशत्रु की तीन पुत्रियों के साथ हुआ। उनमें प्रियमित्रा एवं मनोरमा का विवाह मेघरथ व छोटी राजकुमारी सुमति का विवाह दृढरथ के साथ संपन्न हुआ।

राजा धनरथ ने पुत्र मेघरथ को राज्य देकर वर्षीदान देकर दीक्षा ले ली और तपकर केवलज्ञान पाकर तीर्थकर पर्याय का उपभोगकर मोक्षलक्ष्मी पायी।

मेघरथ के दो पुत्र हुए। प्रियमित्रा से नंदिषेण और मनोरमा से मेघसेन। दृढरथ की पत्नी सुमति ने भी रथसेन नामक पुत्र को जन्म दिया।

एक दिन मेघरथ पौषध लेकर बैठा था उसी समय एक कबूतर आकर उसकी गोद में बैठ गया और "बचाओ ! बचाओ" का करुण नाद करने लगा। राजा ने सस्नेह उसकी पीठ पर हाथ फेरा और कहा :- "कोई भय नहीं है। तू निर्भय रह।" उसी समय एक बाज आया और बोला :- "राजन्! इस कबूतर को छोड़ दो। यह मेरा भक्ष्य है। मैं इसको खाऊँगा।"

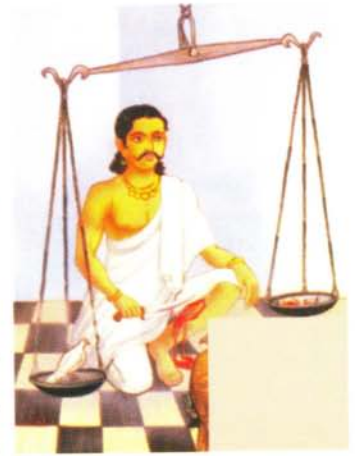
राजाने उत्तर दिया :- "हे बाज ! यह कबूतर मेरी शरण में आया है। मैं इसको नहीं छोड़ सकता। शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है और तू इस बिचारे को मारकर कौनसा बुद्धिमानी का काम करेगा ? अगर तेरे शरीर पर से एक पंख उखाड़ लिया जाय तो क्या यह बात तुझे अच्छी लगेगी ?

बाज बोला :- " पंख क्या पंख की एक कली भी अगर कोई उखाड़ ले तो मैं सहन नहीं कर सकता।"

राजा बोला :- “ हे बाज ! अगर तुझे इतनी भी तकलीफ सहन नहीं होती है तो यह बिचारा प्राणांत पीड़ा कैसे सह सकेगा ? तुझे तो सिर्फ अपनी भूख ही मिटाना है। अतः तू इसको खाने के बजाय किसी दूसरी चीज से अपना पेट भरले” ?

बाज बोला :- “हे राजा ! मैं ताजा मांस के सिवा किसी तरह से भी जिंदा नहीं रह सकता हूँ।” जैसे यह कबूतर मेरे डर से व्याकुल हो रहा है वैसे ही मैं भी भूख से व्याकुल हो रहा हूँ। यह आपकी शरण में आया है। कहिए मैं किसकी शरण में जाऊँ ? अगर आप यह कबूतर मुझे नहीं सौंपेंगे तो मैं भूख से मर जाऊँगा। एक को मारना और दूसरे को बचाना यह आपने कौनसा धर्म अंगीकार किया है ? एक पर दया करना और दूसरे पर निर्दय होना यह कौनसे धर्मशास्त्र का सिद्धांत है ? हे राजा ! मेहरबानी करके इस पक्षी को छोड़िए और मुझे बचाईए।

मेघरथ ने कहा :- “ हे बाज ! अगर ऐसा ही है तो इस कबूतर के बराबर मैं अपने शरीर का मांस तुझे देता हूँ। तू खा और इस कबूतर को छोड़कर अपनी जगह चला जा।” बाज ने यह बात कबूल की। राजा ने छुरी और तराजु मंगवाये। एक पलडे में कबूतर को रखा और दूसरे में अपने शरीर का मांस काटकर रखा। राजा ने अपने शरीर का बहुत सा मांस काटकर रख दिया तो भी वह कबूतर के बराबर न हुआ। तब राजा खुद उसके बराबर तुलने को तैयार हुए। चारों तरफ हाहाकार मच गया। कुटुंबी लोग जोर - जोर से रोने लगे। मंत्री लोग आँखों में आँसू भरकर समझाने लगे, “महाराज ! लाखों को पालनेवाले आप, एक तुच्छ कबूतर को बचाने के लिए प्राण त्यागने को तैयार हुए हैं, यह क्या उचित है ? यह करोड़ों मनुष्यों की बस्ती आपके आधार पर है, आपका कुटुंब परिवार आपके आधार पर है उनकी रक्षा न कर क्या आप एक कबूतर को बचाने के लिए जान गवायेंगे ? महारानियाँ, आपकी पत्नियाँ, आपके शरीर छोड़ते ही प्राण दे देंगी, उनकी मौत अपने सिरपर लेकर भी, एक पक्षी को बचाने के लिए मनुष्यनाश का पाप सिर पर लेकर भी क्या आप इस कबूतर को बचायेंगे ? और राजधर्म के अनुसार दुष्ट बाज को दंड न देकर, उसकी भूख बुझाने के लिए अपना शरीर देंगे ? प्रभो ! आप इस न्याय - असंगत काम से हाथ उठाईए और अपने शरीर की रक्षा कीजिए। हमें तो यह पक्षी ही छलपूर्ण मालूम होता है। संभव है यह कोई देव या राक्षस हो।”

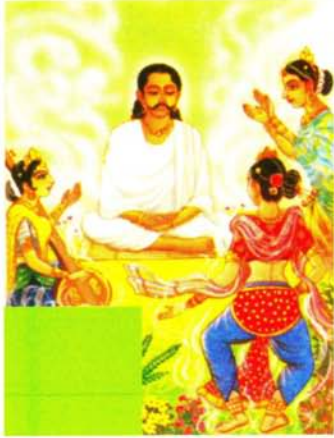


राजा मेघरथ ने गंभीर वाणी से उत्तर दिया :- “मंत्रीजी ! मेरे राज्य की, मेरे कुटुंब की, मेरे शरीर की भलाई एवं राजधर्म की या राजन्याय की दृष्टि से आपका कहना बिलकुल ठीक जान पड़ता है। मगर इस कथन में धर्मन्याय का अभाव है। राजा प्रजा का रक्षक है। प्रजा की रक्षा करना और दुर्बल को जो सताता हो उसे दंड देना यह राजधर्म है - राजन्याय है। उसके अनुसार मुझे बाज को दंड देना और कबूतर को बचाना चाहिए। मगर मैं इस समय राज्यगद्दी पर नहीं बैठा हूँ, इस समय मैं राजदंड धारण करनेवाला मेघरथ नहीं हूँ। इस वक्त मैं पौषधशाला में बैठा हूँ, इस समय मैं सर्वत्यागी श्रावक हूँ। जब तक मैं पौषधशाला में बैठा हूँ और जब तक मैंने सामायिक ले रखी है तब तक मैं किसी को दंड देने का विचार तक नहीं कर सकता। दंड देने का क्या

किसी का जरा सा दिल दुखे ऐसा विचार भी मैं नहीं कर सकता। ऐसा विचार करना, सामायिक से गिरना है, धर्म से पतित होना है। ऐसी हालत में मंत्रीजी ! आप ही कहो, दोनों पक्षियों की रक्षा करने के लिए मेरे पास अपना बलिदान देने के सिवा दूसरा कौनसा उपाय है? मुझे कर्तव्यपरायण मनुष्य समझकर, धर्म पालनेवाला मनुष्य समझकर, शरणागत प्रतिपालक मनुष्य समझकर, यह कबूतर मेरी शरण में आया है, मैं कैसे इसको त्याग सकता हूँ ? और इसी तरह बाज को भूख से तड़पते कैसे छोड़ सकता हूँ ? इसलिए मेरा शरीर देकर इन दोनों जीवों की रक्षा करना ही मेरा धर्म है। शरीर तो नाशवान है। आज नहीं तो कल यह जरूर नष्ट होगा। इस नाशवान शरीर को बचाने के लिए मैं अपने धर्मशरीर का नाश न होने दूँगा।

अंतरिक्ष से आवाज आयी, “धन्य राजा ! धन्य ” सभी आश्चर्य से इधर उधर देखने लगे। उसी समय वहाँ एक दिव्य रूपधारी देवता आ खड़ा हुआ। उसने कहा :- “नृपाल ! तुम धन्य हो। तुम्हें पाकर आज पृथ्वी धन्य हो गयी। बड़े से लेकर तुच्छ प्राणी तक की रक्षा करना ही तो सच्चा धर्म है। अपनी आहुति देकर भी जो दूसरे की रक्षा करता है वही सच्चा धर्मात्मा है।” हे राजा ! मैं ईशान देवलोक का एक देवता हूँ। एक बार ईशानेन्द्र ने आपकी दृढ़ धर्मी होने की तारीफ की। मुझे उस पर विश्वास न हुआ और मैं आपकी परीक्षा लेने के लिए आया। अपना संशय मिटाने के लिए आपको तकलीफ दी इसके लिए मुझे क्षमा करो।” देव वंदन करके अपने देवलोक में चला गया।

एक बार मेघरथ राजा ने अष्टम तप करके कार्योत्सर्ग धारण किया। रात के समय ईशानेन्द्र अपने अन्तापुर में बैठे हुए “नमो भगवते तुभ्यं” कहके नमस्कार किया। इन्द्राणियों के पूछने पर कि आपने अभी किसको नमस्कार किया है ? इन्द्र ने जवाब दिया :- “पुंडरीकिणी नगरी के राजा मेघरथ ने अष्टम तप कर अभी कार्योत्सर्ग धारण किया है। वह इतना दृढ़ मनवाला है कि, दुनिया का कोई भी प्राणी उसे अपने ध्यान से विचलित नहीं कर सकता।” इन्द्राणियों को यह प्रशंसा असह्य हुई। वे बोली :- “हम जाकर देखते हैं कि, वह कैसा दृढ़ मनवाला है।” इन्द्राणियों ने आकर अपनी देवमाया फैलाकर मेघरथ को ध्यान से चलित करने के लिए, रातभर अनेक कोशिशों की, अनुकूल और प्रतिकूल



उपसर्ग किये, परंतु राजा अपने ध्यान से न डिगे। सूर्य उदित होनेवाला है यह देख इन्द्राणियों ने अपनी माया समेट ली और ध्यानस्थ राजा को नमस्कार कर उससे क्षमा मांगी, फिर वे चली गयी। ध्यान समाप्त कर राजाने दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। एक बार धनरथ प्रभु विहार करते हुए उधर आये। मेघरथ ने अपने पुत्र मेघसेन को राज्य देकर दीक्षा ले ली। उनके भाई दृढरथ ने, उनके सात सौ पुत्रों और अन्य चार हजार राजाओं ने भी उनके साथ दीक्षा ली। मेघरथ मुनि ने बीस स्थानक की आराधना कर तीर्थकर नाम कर्म बंध किया। अंत में, मेघरथ और दृढरथ मुनि ने, अखंड चारित्र पाल, अंबर तिलक पर्वत पर अनशन धारण किया।



## ✽ ग्यारहवाँ भव ✽

आयुष्यपूर्ण कर मेघरथ और वृद्धरथ मुनि सर्वार्थसिद्ध देवलोक में देवता हुए और यहाँ पर तेतीस सागरोपम की आयु सुख से बितायी।

## ✽ बारहवाँ भव ✽

बारहवें भव में मेघरथ का जीव देवलोक से च्यवन कर महारानी अचिरादेवी की कुक्षी में अवतरे

## ✽ च्यवन कल्याणक ✽



अनुत्तर विमान में मुख्य सर्वार्थसिद्ध नाम के विमान से च्यवनकर राजा मेघरथ का जीव रानी अचिरादेवी की कोख में आया। उस समय रात को अचिरा देवी ने चक्रवर्ती और तीर्थंकर के जन्म की सूचना देनेवाले चौदह महास्वप्न देखे। प्रातःकाल ही महादेवी ने पति से स्वप्नों का सारा वृत्तान्त वर्णन किया। राजा ने कहा :- "हे महादेवी ! तुम्हारे अलौकिक गुणों वाला एक पुत्र होगा।" राजा ने स्वप्न के फल को जाननेवाले निमित्तियों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछा। उन्होंने उत्तर दिया :- "स्वामिन् ! इन स्वप्नों से आपके यहाँ एक ऐसा पुत्र पैदा होगा जो चक्रवर्ती भी होगा और तीर्थंकर भी।" इन्द्रादि देवों के

आसन काँपे और उन्होंने प्रभु का च्यवन कल्याणक महोत्सव मनाया।

## ✽ जन्म कल्याणक ✽

गर्भकाल पूरा होने पर ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी की मध्य रात्री में भगवान का जन्म हुआ। उस समय चौदह राजलोक में अपूर्व शांती फैल गई। प्रभु के जन्म के समय दसों दिशाएं पुलकित हुई व वातावरण में अपूर्व उल्लास था। इन्द्रों ने उत्सव किया। राजा विश्वसेन ने अत्याधिक प्रमुदित मन से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। श्री शांतीनाथ भगवान का जन्म होने पर छप्पन दिक्कुमारियों का आना, चौसठ इन्द्र मिलकर प्रभु का जन्माभिषेक करना इत्यादि सभी श्री महावीर स्वामी या पार्श्वनाथ प्रभु की तरह समझना।

## ✽ नामकरण ✽

नामकरण के दिन राजा विश्वसेन ने कहा - हमारे राज्य में कुछ मास पूर्व भयंकर महामारी का प्रकोप था। सब लोग चिंतित थे। महारानी अचिरा देवी भी रोग से आक्रांत थी। बालक के गर्भ में आते ही रानी का रोग शांत हो गया, धीरे - धीरे सारे देश से महामारी भी समाप्त हो गयी, अतः बालक का नाम शांतिकुमार रखा जाए। सबने उसी नाम से नवजात शिशु को पुकारा।



## ✽ विवाह और राज्य ✽

शैशव काल समाप्त होते ही राजा विश्वसेन ने उनकी यशोमति आदि कई राजकन्याओं के संग शादी करवाई। सर्वार्थसिद्ध से च्यवनकर वृद्धरथ का जीव महाराजा शांती की पटरानी यशोमति के गर्भ में आया। उसी समय उसने स्वप्न में सूर्य के समान तेजस्वी





चक्र को आकाश से उतर कर मुंह में प्रवेश करते हुए देखा। रानी सहसा उठी, बड़ी रोमांचित हुई। उसने अपने पति महाराज शांति को जगाकर अपने स्वप्न के बारे में बताया। महाराज शांति ने कहा - "देवी ! मेरे पूर्व भव का भाई दृढरथ तुम्हारे गर्भ में आया है।" बालक का जन्म हुआ, नाम दिया गया चक्रायुध। यौवन वय में चक्रायुध का अनेक राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। कालांतर में शांतीनाथ की आयुधशाला में चक्र रत्न पैदा हुआ। चक्र की सहायता से आठ सौ वर्षों में छः खंडों को जीतकर शांती चक्रवर्ती सम्राट बने।

### \* वैराग्य \*

अपने अद्वितीय बल वैभव से छः खण्डों पर राज्य करते हुए शांतीनाथ भगवान को एक दिन पूर्व - जन्म में आचरित तप आदि की स्मृति होने पर मन में विरक्ति हुई इतने में लोकांतिक देवों ने आकर प्रार्थना की "प्रभो! तीर्थ प्रवर्तनाईए"। शांतीनाथ भगवान तो पहले से ही तैयार थे और उन्होंने वार्षिक दान देना आरंभ किया।

### \* दीक्षा कल्याणक \*



सहस्राब्द वन में ज्येष्ठ कृष्णा, चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में शांतीनाथ भगवान ने, पंच मुष्टि लोच किया। तदनन्तर धीर - गंभीर भाव से प्रतीज्ञा का उच्चारण करते हुए भगवान ने "णमो सिद्धाणं" शब्द से सिद्धों को नमस्कार करके "करेमि सामइयं" इस प्रतिज्ञा सूत्र का पाठ बोलकर इन्द्र द्वारा दिया हुआ देव दुष्य कंधे पर धारण कर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। उसी समय भगवान को चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवों ने भी दीक्षा कल्याणक का महोत्सव मनाया।

### \* केवलज्ञान कल्याणक एवं तीर्थ स्थापना \*



भगवान एक वर्ष तक छद्मस्थ साधना करते रहे। अभिग्रह युक्त तप एवं आसन युक्त ध्यान से विशेष कर्म निर्जरा करते हुए पुनः उसी सहस्राब्द वन में पधारे। वहीं पर शुक्लध्यान में लीन होकर उन्होंने क्षपक श्रेणी पर आरूढ हुए, पोष शुक्ला नवमी के दिन नन्दी वृक्ष के नीचे घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान - केवलदर्शन प्राप्त किया। केवली बनते ही देवों ने प्रभु का केवलज्ञान - महोत्सव मनाया। समवसरण की रचना की। देव तथा मनुष्यों की अपार भीड़ में प्रभु ने प्रथम देशना दी। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक व्यक्तियों ने आगार व अणगार धर्म को स्वीकार किया। भगवान् के प्रथम



पुत्र महाराज चक्रायुध ने अपने पुत्र कुलचंद्र को राज्यभार सौंप कर भगवान के पास दीक्षा ली और प्रथम गणधर बने।

## ✽ निर्वाण कल्याणक ✽

भगवान शांतीनाथ ने अपना निर्वाण काल समीप जान सम्मत्शिखर पर पदार्पण किया। यहाँ नौ सौ मुनियों के साथ अनशन करके अंत में ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी के दिन भरणी नक्षत्र में भगवान शांतीनाथ उन मुनियों के साथ मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवों ने निर्वाण कल्याणक मनाया। भगवान ने पच्चीस हजार वर्ष कुमार अवस्था में, पच्चीस हजार वर्ष युवराजावस्था में, पच्चीस हजार वर्ष राजपाट पर और पच्चीस हजार वर्ष दीक्षावस्था में, इस तरह एक लाख वर्ष की आयु पूर्ण की।



## ✽ प्रभु का परिवार ✽

|            |            |                   |            |                |          |
|------------|------------|-------------------|------------|----------------|----------|
| गणधर       | - 36       | केवलज्ञानी        | - 4300     | मनःपर्यवज्ञान  | - 4000   |
| अवधिज्ञानी | - 3000     | वैक्रिय लब्धिधारी | - 6000     | चतुर्दश पूर्वी | - 800    |
| चर्चावादी  | - 2400     | साधु              | - 62000    | साध्वी         | - 61,600 |
| श्रावक     | - 2,19,000 | श्राविका          | - 3,93,000 |                |          |

## ✽ एक झलक ✽

|              |                |               |                |
|--------------|----------------|---------------|----------------|
| माता         | - अचिरा        | पिता          | - विश्वसेन     |
| नगरी         | - हस्तिनापुर   | वंश           | - इक्ष्वाकु    |
| गौत्र        | - काश्यप       | चिह्न         | - मृग          |
| वर्ण         | - सुवर्ण       | शरीर की ऊंचाई | - 40 धनुष      |
| यक्ष         | - गरूड         | यक्षिणी       | - निर्वाणी     |
| कुमार काल    | - 25 हजार वर्ष | राज्य काल     | - 50 हजार वर्ष |
| दीक्षापर्याय | - 25 हजार वर्ष | आयुष्य        | - 1 लाख वर्ष   |

## ✽ पंच कल्याणक ✽

|           | तिथि              | स्थान       | नक्षत्र |
|-----------|-------------------|-------------|---------|
| च्यवन     | भाद्रपद कृष्णा 6  | सर्वाथसिद्ध | भरणी    |
| जन्म      | ज्येष्ठ कृष्णा 13 | हस्तिनापुर  | भरणी    |
| दीक्षा    | ज्येष्ठ कृष्णा 14 | हस्तिनापुर  | भरणी    |
| केवलज्ञान | पोष शुक्ला 9      | हस्तिनापुर  | भरणी    |
| निर्वाण   | ज्येष्ठ कृष्णा 13 | सम्मत्शिखर  | भरणी    |

## \* 22वें तीर्थंकर भगवान श्री अरिष्टनेमी के पूर्व भवों का वर्णन \*

### \* पहला भव

जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र में अचलपुर नगर में राजा विक्रमधन राज्य करते थे। उनकी पटरानी धारिणी थी। रानी ने एक रात्री में स्वप्न देखा कि एक पुरुष ने फलों वाले आम वृक्ष को हाथ में लेकर कहा कि यह वृक्ष तुम्हारे आंगन में रोपा जाता है। जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे ही वैसे यह अधिक फल देने वाला होगा और भिन्न भिन्न नौ स्थानों पर जगह रोपा जाएगा। सवेरे शय्या छोड़कर रानी उठी और नित्य कृत्यों से निवृत्त हो उसने स्वप्न का फल राजा से पूछा। राजा ने शीघ्र ही स्वप्न निमित्तिक को बुलाकर स्वप्न का फल कहने की आज्ञा दी, उसने कहा - " हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र अधिक गुणवान होगा। और नौ बार वृक्ष रोपा जायेगा इसका फल केवली गम्य है।" समय पूर्ण होने पर रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया पुत्र का नाम धन रखा गया। युवा होने पर धनकुमार का विवाह कुसुमपुर नरेश सिंह की पुत्री राजकुमारी धनवती के साथ हुआ। एक दिन दोनों जल क्रीडा के लिए एक सरोवर में गये। वहाँ उन्होंने एक स्थान पर एक मुनिराज को मुर्छित हुए देखा। अनेक शीतोपचार कर उन्होंने उनकी मूर्च्छा दूर की। निर्दोष आहार पानी औषधि आदि से उन्होंने मुनि की सेवा भक्ति की। मुनि के उपदेश से उन्होंने सम्यक्त्व सहित श्रावक व्रत को स्वीकार किया।

धनकुमार और धनवती रानी ने चिरकाल तक संसार का सुख भोग अपने पुत्र जयंत को राज्य का भार सौंपकर दीक्षा ली और चिरकाल तक मुनिव्रत पाला।

### \* दूसरा भव

अनशन सहित आयुपूर्ण कर दोनों सौधर्म देवलोक में देव रूप उत्पन्न हुए।

### \* तीसरा भव

धनकुमार का जीव वहाँ से च्यवकर राजा श्री सुर की रानी विधुन्यमनि के गर्भ से जन्मा उसका नाम चित्रगति रखा गया। धनवती का जीव राजा अनन्त्रसिंह की रानी शशिप्रभा के गर्भ से पुत्री रूप में जन्मी। उसका नाम रत्नावती रखा गया। कालांतर में उसका विवाह चित्रगति के साथ हुआ। श्री सुर राजा ने अपने पुत्र चित्रगति को राज्य देकर दीक्षा ले ली। चित्रगति न्याय से राज्य करने लगा। एक बार उसके आधीन एक राजा मर गया। उसके दो पुत्र थे। वे दोनों राज्य के लिए लड़ने लगे। चित्रगति ने उनको समझाकर शांत किया। कुछ दिन बाद उसने सुना कि दोनों भाई एक दिन आपस में लड़कर मर गये। इस समाचार से उसे संसार से वैराग्य हो गया और उसने पुरंदर नामक पुत्र को राज्य सौंपकर, पत्नी रत्नावती और अनुज बंधु मनोगति और चपलगति के साथ श्री दमधर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की।

### \* चौथा भव

ध्यान साधना करते हुए चित्रगति चौथे महेन्द्र देवलोक में महर्षिक देव बना। उनके दोनो भाई एवं पत्नी उसी देवलोक में देव बने।

### \* पाँचवा भव

पूर्व महाविदेह की पद्म विजय के सिंहपुर नाम का राजा हरिन्दी था। उसकी रानी प्रियदर्शना थी।

चित्रगति का जीव देवलोक से च्यवकर प्रियदर्शना के गर्भ में जन्मा। उसका नाम अपराजित रखा गया।

रत्नावती का जीव जनानदपुर के राजा जितशत्रु की रानी धारिनी के गर्भ से पुत्र रूप में जन्मी। उसका नाम प्रीतिमनी रखा गया वह सब कलाओं से निपुण हुई। महाराजा जितशत्रु ने पुत्री के युवा होने पर स्वयंवर पद्धति से उसका विवाह करने का निश्चय किया। स्वयंवर मंडप में राजकुमार अपराजित भी आया। वह प्रीतिमनी के सारे प्रश्नों का उत्तर देकर प्रीतिमती को हरा दिया। प्रीतिमती ने उसके गले में वरमाला डाल दी। कुछ दिन ससुराल रहकर वह अपनी पत्नी के साथ सिंहपुर आ गया।

मनोगति व चपलगति के जीव भी माहेन्द्र देवलोक से च्यवकर अपराजित के सुर और सोम नाम से अनुज बंधु बने। राजा हरिनंदी ने अपराजित को राज्य देकर दीक्षा ली और तप करके मोक्ष में गये।

एक बार अपराजित राजा फिरते हुए एक बगीचे के अंदर जा पहुँचे। वह बगीचा समुद्रपाल नामक सेठ का था। सुख सामग्रीयों की उसमें कोई कमी न थी। सेठ का लडका अनंगदेव वहाँ क्रीडा में निमग्न था। राजा के आने की बात जानकर उसने उनका स्वागत किया। राजा को यह जानकर परम संतोष हुआ कि मेरे राज्य में ऐसे सुखी और समृद्ध पुरुष हैं। दूसरे दिन राजा जब फिर निकला तब उसने अनंगपाल के मुर्दे को लोग ले जा रहे थे। जीवन की अस्थिरता ने उसको संसार से विरक्त कर दिया। कल शाम को जो परम स्वस्थ और सुख में निमग्न था आज शाम को उसका मुर्दा जा रहा है। यह भी कोई जीवन है? राजा ने अपने पुत्र पद्मनाम को राज्य सौंपकर अपनी पत्नी व अनुज बंधुओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।

### ✽ छट्ठा भव

ये सभी तपकर कालधर्म को प्राप्त हुए और आरण नामके ग्यारहवें देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव हुए।

### ✽ सातवाँ भव

भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर में श्री सेन नाम का राजा था। उसकी श्रीमती नाम की रानी थी। उसके गर्भ से अपराजित का जीव च्यवकर उत्पन्न हुआ। उसका नाम शंख रखा गया। बड़ा होने पर वह बड़ा विद्वान और वीर हुआ। विमलबोध का जीव भी च्यवकर श्रीषेण राजा के मंत्री गुणनिधि के घर उत्पन्न हुआ। उसका नाम मतिप्रभ रखा गया। शंख और मतिप्रभ की आपस में बहुत मित्रता हो गयी। एक बार राजा श्रीषेण के राज्य में समरकेतु नामका डाकू लोगों को लूटने और सताने लगा। प्रजा पुकार करने आयी। राजा उसको दंड देने के लिए जाने की तैयारी करने लगा। कुमार शंख ने पिता को आग्रहपूर्वक रोका और खुद उसको दंड देने गया। डाकू को परास्त किया। वह कुमार की शरण में आया। कुमार ने उसका सारा धन उन प्रजाजनों को दिला दिया। फिर डाकू को माफ कर उसे अपनी राजधानी में ले चला।

रास्ते में शंख का पडाव था। वहाँ रात्री में उसने किसी स्त्री का करुण रुदन सुना। वह खड्ग लेकर उधर चला। रोती हुई स्त्री के पास पहुँचकर उससे रोने का कारण पूछा। स्त्री ने उत्तर दिया - अनंगदेश में जितारी नाम के राजा की कन्या यशोमती है। उसे श्रीषेण के पुत्र शंख पर प्रेम हो गया। जितारी ने कन्या की इच्छा के अनुसार उसकी सगाई कर दी। विद्याधरपति मणिशेखर विद्याबल से उसको हरकर ले चला और वह दुष्ट मुझे इस जंगल में डालकर चला गया। शंखकुमार उस धाय को अपने पडाव में जाने की आज्ञा देकर यशोमती की ढूँढने निकला। एक पर्वत पर उसने यशोमती के साथ विद्याधर को देखा और ललकारा। विद्याधर के साथ शंख

का युद्ध हुआ। अंत में विद्याधर हार गया और उसने यशोमती शंख को सौंप दी। पराक्रमी वीर शंख को अन्य कई विद्याधरों ने भी अपनी कन्याएँ अपर्ण की। शंख सबको लेकर हस्तिनापुर गया। माता - पिता को अपने पुत्र के पराक्रम से बहुत आनंद हुआ। शंख के पूर्व जन्म के बंधु सूर और सोम भी आरण देवलोक से च्यवकर श्रीषेण के घर यशोधर और गुणधर नामके पुत्र हुए। राजा श्रीषेण ने पुत्र शंख को राज्य देकर दीक्षा ली। जब उन्हें केवल ज्ञान हुआ तब राजा शंख अपने अनुजों और पत्नी सहित देशना सुनने गया। देशना के अंत में शंख ने पूछा “भगवन् यशोमती पर इतना अधिक स्नेह मुझे क्यों हुआ ?”

केवली ने कहा “ जब तू धनकुमार था तब यह तेरी धनवती पत्नी थी। सौधर्म देवलोक में यह तेरा मित्र हुआ। चित्रगति के भव में यह तेरी रत्नवती नामकी प्रिया थी। माहेन्द्र देवलोक में यह तेरा मित्र था। अपराजित के भव में यह तेरी प्रीतिमती नामकी प्रियमता थी। आरण देवलोक में तेरी मित्र थी। इस भव में यह तेरी यशोमती नामकी पत्नी हुई है। इस तरह सात भवों से तुम्हारा संबंध चला आ रहा है। यही कारण है कि तुम्हारा आपस में बहुत प्रेम है। भविष्य में तुम दोनो अपराजित नाम के अनुत्तर विमान में जाओगे और वहाँ से च्यवकर इसी भरतखंड में नेमिनाथ नाम के बाईसवें तीर्थकर होंगे और यह राजीमती नाम की स्त्री होगी। तुमसे ही ब्याह करना स्थिरकर यह कुमारी ही तुमसे दीक्षा लेगी और मोक्ष में जाएगी।” अपने पूर्व भव के वृतांत को सुनकर शंख को वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा ले ली। उसके अनुजों ने, मित्रों ने और पत्नी ने भी दीक्षा ली। बीस स्थानक तप आराधना कर उसने तीर्थकर नाम कर्म बाँधा।



### \* आँठवाँ भव



अंत में पादोपगमन अनशनकर शंखमुनि सबके साथ अपराजित नाम के चौथे अनुत्तर विमान में देव रूप उत्पन्न हुए।

### \* नवमाँ भव - अरिष्टनेमी

#### \* च्यवन कल्याणक \*

अर्हत् अरिष्टनेमि तीन ज्ञान सहित अपराजित विमान से च्यवकर कार्तिक कृष्ण 12 के दिन चित्रा नक्षत्र में सौरिपुर नगर के समुद्रविजय राजा की महारानी शिवादेवी के गर्भ में पधारें, महारानी ने चौदह महास्वप्न देखें। इन्द्रादि देवों ने च्यवन कल्याणक मनाया।

## ✽ जन्म कल्याणक ✽

गर्भकाल पुरा होने पर सावन शुक्ला पंचमी की मध्य रात्री की शुभ वेला में भगवान अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। श्री अरिष्टनेमि का जन्म होने पर छप्पन दिक्कुमारियों का आना, चौसठ इन्द्र मिलकर प्रभु का जन्माभिषेक करना इत्यादि सभी श्री महावीर स्वामी या पार्श्वनाथ प्रभु की तरह समझना।

## ✽ नामकरण ✽

नाम के दिन महारानी शिवा श्याम कांति वाले नवजात शिशु को लेकर आयोजन में आई। लोगों ने बालक को देखा, आशीर्वाद दिया। नाम की चर्चा में राजा समुद्रविजय ने कहा - बालक के गर्भ में आने के बाद राज्य सब प्रकार के अरिष्ट से बचा रहा है। इसकी माता ने अरिष्ट रत्नमय नेमि (चक्र की धार) का स्वप्न आया था, अतः बालक का नाम अरिष्टनेमि रखा जाए। उपस्थित जनसमूह ने उन्हें इसी नाम से पुकारा।

## ✽ अरिष्टनेमि महान् योद्धा थे :-

महाराज समुद्रविजय का नाम यादव - कुल के प्रतापी सम्राटों में गिना जाता था। उनके एक छोटे भाई थे वसुदेव। वसुदेव के पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण थे। यादव कुल में ये तीनों राजकुमार अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण और बलराम अपनी असाधारण बुद्धि और अपार शक्ति एवं पराक्रम के लिए विख्यात थे। एक बार यादवों की समृद्धि एवं ऐश्वर्य की यशोगाथाएँ सुनकर प्रतिवासुदेव जरासंध ने यादवों के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। युद्ध प्रारंभ हुआ। जरासंध के पुत्रों को यादव वीरों ने मार डाला। अपने पुत्रों को मरते देख जरासंध अत्यंत कुपित हुआ और बाण वर्षा करते हुए यादव सेना को मथने लगा। उसने बलराम पर गदा का भीषण प्रहार किया, बलराम मूर्च्छित हो गया। बलराम की यह दशा देख श्री कृष्ण ने क्रुद्ध हो जरासंध के सम्मुख ही उसके अवशिष्ट 19 पुत्रों को मार डाला। यह देख जरासंध कुपित हो कृष्ण को मारने दौड़ा। अरिष्टनेमि भी उस युद्धभूमि में उपस्थित थे। उनके लिए सर्व शस्त्रों से सुसज्जित रथ को मातलि सारथी के साथ इन्द्र ने भेजा। मातलि ने हाथ जोड़कर अरिष्टनेमि से निवेदन किया हे त्रिलोकनाथ ! यह जरासंध आपके सामने एक तुच्छ कीट के समान है। आपकी उपेक्षा के कारण यह पृथ्वी को यादव विहीन कर रहा है। प्रभो ! यद्यपि आप जन्म से ही सावद्य (पापपूर्ण) कार्यों से विमुख रहे हैं तथापि शत्रु के द्वारा जो आपके कुल का विनाश किया जा रहा है, इस समय आपको उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मातलि की प्रार्थना सुन अरिष्टनेमि ने अवसर देख युद्ध की बागडोर अपने हाथ में ले ली। पौरंदर शंख का घोष किया। उस शंख के नाद से दसों दिशाएँ, सारा नभमण्डल और शत्रु काँप उठे। इस तरह अरिष्टनेमि ने अल्प समय में ही एक लाख शत्रु योद्धाओं को जीत लिया।

प्रतिवासुदेव को केवल वासुदेव ही मारता है। इस अटल नियम को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अरिष्टनेमि ने अपने रथ को मनो-वेग से शत्रु राजाओं के चारों और घुमाते हुए जरासंध की सेना को अवरुद्ध कर रखा। जरासंध और कृष्ण के बीच भयंकर युद्ध हुआ और अंत में श्री कृष्ण ने चक्ररत्न से जरासंध का सिर काटकर पृथ्वी पर लुढ़का दिया। अरिष्टनेमि ने भी उन सब राजाओं को मुक्त किया। वे सब उनके चरणों में नतमस्तक हो बोले - जरासंध और हम लोगों ने अपनी अपनी मूढ़तावश स्वयं का सर्वनाश किया है। जिस दिन आप यदुकुल में



अवतरित हुए उसी दिन से हमें समझ लेना चाहिए था कि अब यादवों को कोई नहीं जीत सकता। अरिष्टनेमि उन सब राजाओं के साथ कृष्ण के पास पहुँचे। उन्हें देखते ही श्री कृष्ण रथ से कूद पड़े और अरिष्टनेमि का प्रगाढ़ आलिंगन करने लगे। अरिष्टनेमि के कहने पर श्रीकृष्ण ने उन सब राजाओं के राज्य उन्हें वापस दे दिये।

**कुमार अरिष्टनेमि अद्वितीय शक्तिशाली थे :-**

एक दिन वे यादव कुमारों के साथ - साथ घूमते - घूमते वासुदेव श्री कृष्ण की आयुधशाला में पहुँच गये, वहाँ वृहदाकार वाले पांचजन्य शंख को देखा। वे उसे उठाने लगे तब आयुधशाला रक्षक ने प्रणाम कर कहा - यद्यपि आप श्री कृष्ण के भ्राता हैं और प्रबल पराक्रमी भी हैं, पर इस शंख को बजाना तो दूर इसे उठा पाना भी आपके लिए संभव नहीं है। इसको तो केवल श्रीकृष्ण ही उठा और बजा सकते हैं। अतः आप व्यर्थ ही इसे उठाने का प्रयास न करें। रक्षक पुरुष की बात सुनकर कुमार अरिष्टनेमि ने बड़ी सरलता से शंख को उठाया और



अधर - पल्लवों के पास ले जाकर बजा दिया। दिव्य शंखध्वनि से द्वारकापुरी गुंज उठी। श्री कृष्ण साश्चर्य सोचने लगे - इस प्रकार इतने अपरिमित वेग से शंख बजाने वाला कौन हो सकता है ? क्या कोई चक्रवर्ती प्रकट हो गया है या इन्द्र पृथ्वी पर आया है ? थोड़ी ही देर में आयुधशाला के रक्षक ने आकर कृष्ण से निवेदन किया - हे देव ! कुतूहलवश कुमार अरिष्टनेमि ने आयुधशाला में पांचजन्य शंख बजाया है। श्रीकृष्ण को उसका अपरिमित बल देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। श्री कृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा - अब तक मेरी यह धारणा थी कि मेरे सिवाय इस शंख को और कोई नहीं बजा सकता, किंतु मुझे प्रसन्नता है कि मेरे छोटे भाई ने इस शंख को बजाया है। मैं चाहता हूँ कि आयुधशाला में चलकर हम दोनों भाई परीक्षा कर लें कि किसमें कितना अधिक बाहु - बल है। अरिष्टनेमि ने मुस्कराकर कहा - " भैया ! जैसी आपकी इच्छा !" श्रीकृष्ण ने अपनी विशाल दाहिनी भुजा फैलाकर कहा - "कुमार ! देखें क्या आप इसे झुका सकते हैं ?" कुमार अरिष्टनेमि ने कहा - "हाँ"

और सहज ही झुमकर उसे एकदम झुका दिया। फिर अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा फैलाई और श्रीकृष्ण उस पर झूमने लगे। वासुदेव श्रीकृष्ण ने दोनों हाथों से पुरा बल लगाकर झुकाने की चेष्टा की, परंतु नेमिकुमार का प्रचण्ड भुजदण्ड झुक नहीं सका।

**\* विवाह और वैराग्य \***

अपने लघु भ्राता का अद्वितीय बल पराक्रम देखकर वासुदेव श्रीकृष्ण अत्यंत हर्ष - विभोर हो गये । एक बार उनके मन में आया - यह अवश्य ही षट्खण्ड चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, परंतु फिर वे उनकी विरक्ति और आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भावना जानकर खिन्न हो गये। श्री कृष्ण ने सोचा किसी प्रकार इसे विवाह के लिए सहमत करना चाहिए। विवाह के बंधन में बंधते ही भोगों के प्रति इसकी अनुरक्ति बढेगी और फिर यह संयम की बात भूल जाएगा। श्री कृष्ण की इस योजना को सफल बनाने की जिम्मेदारी सत्यभामा आदि रानीयों ने ली।

एक दिन वसंत ऋतु में रानियों ने मिलकर अपने प्यारे देवर नेमिकुमार को फाग खेलने के लिए बगीचे में बुला वहाँ हंसी - मजाक के साथ सरोवर में जल क्रीडा करते हुए भाभियों ने देवरानी लाने के लिए नेमिकुमार को मजबूर कर दिया। माता - पिता, भाई श्री कृष्ण आदि सबका अत्यधिक आग्रह देखकर नेमिकुमार विवाह के लिए मौन रहे। तब श्री कृष्ण ने स्वयं उग्रसेन के पास जाकर नेमिकुमार के लिए राजीमती की मांग कर ली, इधर कोष्टिक निमित्तक को बुलाकर लग्न शोधाये, वर्षाकाल में लग्न नहीं होते हैं, मगर उतावल के कारण श्री कृष्ण के वचन से श्रावण सुदि 6 का दिन निर्णय किया गया। विवाह से पूर्व किये जाने वाले सारे रीति रिवाज संपन्न हुए। विवाह का दिन आया। अरिष्ट नेमि की बारात सजायी गई। कुमार के हाथी के आगे अनेक यादव कुमार घोड़ों पर सवार हो चल रहे थे। दोनों पार्श्व में मदोन्मत्त हाथियों पर बैठे



हजारों राजा चल रहे थे। अरिष्टनेमि के हाथी के पीछे - बलराम और कृष्ण हाथियों पर आरूढ थे। सुंदर मंगल गीत गाये जा रहे थे। इस प्रकार बड़े ही ठाठ-बाट के साथ कुमार की बारात महाराज उग्रसेन के प्रासाद की ओर बढ़ रही थी।

राजीमती भी अलंकृत हुई। सखियों से घिरी वह अपने सौभाग्य की सराहना कर रही थी। सहसा उसकी दाहिनी आँख और भुजा फडकने लगी। अनिष्ट की आशंका



से उसका हृदय धडकने लगा। सखियों ने उसे ढाढस बँधाया। इस मंगलमय बेला में तुम अमंगल की आशंका क्यों कर रही हो ?

बारात प्रासाद के निकट पहुँचने वाली थी, तभी कुमार की दृष्टि एक बाड़े में बँधे, भय से व्याकुल वन्य पशुओं पर गई। उनका करुणा क्रन्दन उसके कानों में सुनाई दिया। कुमार ने सारथी से पूछा - यह किसका करुण क्रन्दन सुनाई दे रहा है।



सारथी ने कहा - स्वामिन ! यह पशुओं का क्रन्दन है। आपके विवाहोत्सव में जो मांसभक्षी म्लेच्छ राजा आये हैं, उनके लिए इनका माँस तैयार किया जाएगा। मृत्यु के भय से क्रन्दन कर रहे हैं। सारथी के वचन सुनकर कुमार ने कहा - एक की प्रसन्नता के लिए दूसरों की हिंसा करना घोर अधर्म है। सारथी ! मैं विवाह के लिए तनीक भी उत्सुक नहीं हूँ। तुम इन प्राणियों को बन्धनमुक्त कर दो। पशु - पक्षियों को तत्क्षण मुक्त कर दिया गया। कुमार ने



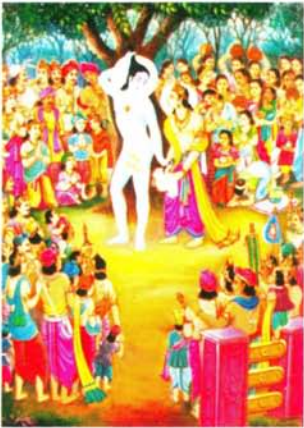


सारथी से कहा - रथ को वापस मोड़ लो। मुझे ऐसा विवाह नहीं करना है, जिसमें मूक प्राणीयों की बलि दी जाती हो। उन्हें लौटते देख यादवों पर मानो वज्रपाल सा हो गया। माता शिवा, पिता समुद्रविजय, श्री कृष्ण बलदेव आदि सभी यादव मुख्य अपने अपने वाहनों से उतर पड़े। सबने समझाया - कुमार ! इस मंगल महोत्सव से मुख मोड़कर कहाँ जा रहे हो ? विरक्त कुमार ने कहा - तात ! जिस प्रकार ये पशु - पक्षी बंधनों से बंधे हुए थे, उसी तरह आप और हम सब भी कर्मों के प्रगाढ़ बंधन में बंधे हुए हैं, जिस प्रकार मैंने इन पशु - पक्षियों को बंधन मुक्त कर दिया। उसी प्रकार मैं अब अपने आप कर्म - बंधन से सदा सर्वदा के लिए मुक्त करने के लिए दीक्षा ग्रहण करूंगा। माता - पितादि ने समझ लिया "अब नेमिनाथ न रहेंगे। इनको रोके रखना व्यर्थ है।" सबने रथ को रास्ता दे दिया। नेमिनाथ सौरिपुर पहुंचे। उसी समय लोकांतिक देवों ने आकर प्रार्थना की, प्रभो ! तीर्थ प्रवर्ताइए। नेमिनाथ तो पहले ही तैयार थे। उन्होंने वार्षिक दान देना आरंभ कर दिया।



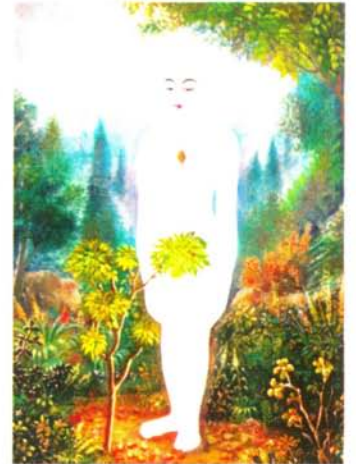
### ※ दीक्षा कल्याणक ※

अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान ने श्रावण सुदि छट्ट के दिन पहले प्रहर में उत्तरकुरा नाम की पालखी में विराजकर देव - असुर और मनुष्य की पर्षदा सहित द्वारिका नगरी के बीचोबीच होकर निकले, जहाँ रैवताचल (गिरनार) का उद्यान है, वहाँ पधारे। अशोक वृक्ष के नीचे चित्रा नक्षत्र में चंद्रयोग आने पर समस्त वस्त्रालंकारों का त्याग कर चौविहार छट्ट तप सहित स्वयं ही दोनों हाथों से पंच मुष्टि लोच किया। तदनन्तर धीर - गंभीर भाव से प्रतीज्ञा का उच्चारण करते हुए भगवान ने "णमो सिद्धाणं" शब्द से सिद्धों को नमस्कार करके "करेमि सामइयं" इस प्रतिज्ञा सूत्र का पाठ बोलकर इन्द्र द्वारा दिया हुआ देव दुष्य कंधे पर धारण कर एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा अंगीकार की। उसी समय भगवान को चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।



### ※ केवलज्ञान कल्याणक ※

अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान ने दीक्षा के बाद 54 दिन तक शरीर शुश्रुषा का त्याग कर, आसोज वदि अमावस के दिन पिछले प्रहर में गिरनार के सहसावन में वेतस (बैत) वृक्ष के नीचे, चौविहार अष्टम तप सहित, चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग के प्राप्त होने पर शुक्लध्यान ध्याते हुए केवलज्ञान व केवलदर्शन को प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान महोत्सव मनाकर समवसरण की रचना की। द्वारिका के नागरिक भगवान के सर्वज्ञ बनने की बात सुन हर्षविभोर हो उठे। वासुदेव श्री कृष्ण सहित सभी लोगों ने वहाँ आकर भगवान् के दर्शन किये। चतुर्विध तीर्थ की स्थापना हुई।



## \* राजीमती की प्रव्रज्या \*

अरिष्टनेमि की बारात वापस लौट जाने से राजीमती की आशंका सच में बदल गई। वह अपने तन - मन की सुधि भूल रात दिन अरिष्टनेमि के चिंतन में ही डूबी रहने लगी। अपने प्रियतम के विरह में उसे एक - एक दिन एक पर्व के समान लम्बा लगता था। बारह मास एक अपलक प्रतीक्षा के बाद जब राजीमती ने भगवान अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या की बात सुनी तो हर्ष और आनंद रहित होकर स्तब्ध हो गई। वह सोचने लगी - "धिक्कार है मेरे जीवन को, जो मैं प्राणनाथ अरिष्टनेमि के द्वारा ठुकराई गई हूँ। अब तो उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करना मेरे लिए श्रेयस्कर है। अपने माता - पिता से अनुमति प्राप्त कर वह भी अपनी अनेक सहेलियों के साथ प्रव्रजित हो गई।

एक बार विहार करते हुए प्रभु गिरनार पहुँचे। वहाँ से रथनेमि (अरिष्टनेमि के भाई) आहारपानी लेने गये थे, मगर अचानक बारिश आ गयी और रथनेमि एक गुफा में चले गये। राजीमती और अन्य साधवियाँ भी नेमिनाथ प्रभु को वंदनकर लौट रही थी, बारीश के कारण सभी इधर उधर हो गयी। राजीमती उसी गुफा में चली गयी जिसमें रथनेमि थे। उसे मालूम नहीं था कि रथनेमि भी उसी गुफा में है। वह अपने भीगे हुए कपडे उतारकर सुखाने लगी। रथनेमि उसे देखकर कामातुर हो गये और आगे आये। राजीमती ने पैरों की आवाज सुनकर झट से गीला कपडा ही ओढ लिया। रथनेमि ने प्रार्थना की "सुंदरी ! आओ हम विषय सुख भोगें, भुक्त भोगी होने के पश्चात् संयम ग्रहण कर लेंगे। संयमधारिणी राजीमती बोली " आप मुनि हैं, आप तीर्थकर के भाई है, आप उच्च वंश की संतान है, आप अन्धकविष कुल में उत्पन्न हुए हैं अगंधन कुल में जन्मे हुए सर्प प्राणों का अंत होने पर भी वमन किये हुए को पुनः नहीं ग्रहण करते । इस कुल में उत्पन्न सर्प अग्नि में जलना पसंद करेगा पर जहर वापिस ग्रहण नहीं करता। आप जानते हो कि आपके भाई ने मुझे वमन कर दिया है फिर भी मेरे उपभोग करने की इच्छा करते हो ! इस न्याय से आपका मरना श्रेयस्कर है पर शील खण्डन करना ठीक नहीं । पुण्य योग से मिले हुए इस मुनिव्रत के अहसास को मत भूलो इत्यादि उपदेश देकर हाथी अंकुश की तरह वश कर राजीमती ने रथनेमि को संयम में स्थिर किया। रथनेमि प्रभु के सामने अपने पापों की आलोचना कर प्रायश्चित किया और श्री नेमिनाथ भगवान से 54 दिन पहले मोक्ष में गये। राजीमती भी मोक्ष पधारी।

## \* निर्वाण कल्याणक \*



भगवान अरिष्टनेमि 300 वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे। दीक्षा लेने के बाद 54 रात्रि - दिवस छद्मस्थ अवस्था में रहे। 700 वर्ष से कुछ कम वे केवली अवस्था में रहे। जीवन के अंतिम समय में 536 साधुओं के साथ वे उज्जयंत गिरि पर पहुँचे। 30 दिनों के अनशन में आषाढ शुक्ला अष्टमी की मध्य रात्री में वे अघाति कर्मों का नाश कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये। इस प्रकार 1000 वर्षों का आयुष्य पूर्ण होने पर वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

**\* प्रभु का परिवार \***

|                          |                      |
|--------------------------|----------------------|
| गणधर - 18                | केवलज्ञानी - 1500    |
| मनः पर्यवज्ञानी - 1000   | अवधिज्ञानी - 1500    |
| वैक्रिय लब्धिधारी - 1500 | चतुर्दश पूर्वी - 400 |
| चर्चावादी - 800          | साधु - 18,000        |
| साध्वी - 40,000          | श्रावक - 1,69,000    |
| श्राविका - 3,36,000      |                      |

**\* एक झलक \***

|                      |                           |
|----------------------|---------------------------|
| माता - शिवा          | पिता - समुद्रविजय         |
| नगरी - सौरीपुर       | वंश - हरिवंश              |
| गोत्र - गौतम         | चिन्ह - शंख               |
| वर्ण - श्याम         | शरीर की ऊंचाई - 10 धनुष्य |
| यक्ष - गोमेध         | यक्षिणी - अंबिका          |
| कुमार काल - 300 वर्ष | राज्य काल - नहीं          |
| छद्मस्थ काल - 54 दिन | कुल दीक्षा काल - 700 वर्ष |
| आयुष्य - 1 हजार वर्ष |                           |

**\* पंच कल्याणक \***

|           | तिथि              | स्थान    | नक्षत्र |
|-----------|-------------------|----------|---------|
| च्यवन     | कार्तिक कृष्णा 12 | अपराजित  | चित्रा  |
| जन्म      | श्रावण शुक्ला 5   | सौरीपुर  | चित्रा  |
| दीक्षा    | श्रावण शुक्ला 6   | द्वारिका | चित्रा  |
| केवलज्ञान | आसोज कृष्णा 15    | रैवतगिरी | चित्रा  |
| निर्वाण   | आषाढ शुक्ला 8     | रैवतगिरी | चित्रा  |



# \* जैन तत्त्व मीमांसा \*

- \* अजीव तत्त्व
- \* पुण्य तत्त्व
- \* पाप तत्त्व
- \* आश्रव तत्त्व



## \* अजीव तत्व \*

पूर्व प्रकरण में जीव तत्व का प्रतिपादन किया गया। जीव का प्रतिपक्षी तत्व अजीव है। अतएव यहाँ अजीव तत्व का निरूपण किया जाता है। न जीव : अजीव :- इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो जीव नहीं है वह अजीव है। जिसमें चेतना गुण का पूर्ण अभाव है, जिसे सुख - दुख की अनुभूति नहीं होती है, जो सदाकाल निर्जीव ही रहता है, वह अजीव तत्व है। अजीव तत्व के दो भेद हैं।

1. अरूपी                      2. रूपी

1. **अरूपी** :- जिसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श न हो उसे अरूपी या अमूर्त द्रव्य कहते हैं। उसके चार भेद हैं।

1. धर्मास्तिकाय              2. अधर्मास्तिकाय      3. आकाशास्तिकाय      और 4. काल

2. **रूपी** :- जिसमें वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श हो उसे रूपी या मूर्त द्रव्य कहते हैं। इसका एक भेद है :- पुद्गलास्तिकाय

जहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये सभी द्रव्य होते हैं वह लोक हैं। जहाँ पर केवल आकाश ही है वह अलोक है। अलोक में जीव और पुद्गल नहीं होते, चूँकि वहाँ पर धर्म और अधर्म द्रव्य नहीं है। इस प्रकार धर्म और अधर्म द्रव्य लोक और अलोक का विभाजन करते हैं। धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल के साथ अस्तिकाय शब्द जुड़ा है। यह एक पारिभाषिक शब्द है। इसमें दो पद हैं - अस्ति + काय। अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह / प्रचय जो प्रदेशों का समूह रूप है वह अस्तिकाय हैं। काल को अस्तिकाय नहीं कहा गया है, क्योंकि वह प्रदेश समूह रूप नहीं है, वह केवल प्रदेशात्मक है।

**धर्मास्तिकाय :- (Medium of Motion for Soul and Matter) गति सहायोधर्म :-** जो जीव और

पुद्गल की गति (चलने) में उदासीन भाव से सहायक होता है उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं। जिस प्रकार मछली को तैरने में जल सहायक होता है, अथवा वृद्ध पुरुष को चलने में दण्य सहायक होता है। उसी तरह जीव और पुद्गल की गति क्रिया में निमित्त होने वाला द्रव्य धर्मास्तिकाय है।

गति की शक्ति तो द्रव्य में अपनी रहती है, परंतु धर्म द्रव्य उसे चलाने में सहायक होता है। जैसे मछली स्वयं तैरती है तथापि

उसकी वह क्रिया पानी के बिना नहीं हो सकती। पानी के अभाव में तैरने की शक्ति होने पर भी वह नहीं तैर सकती। इसका अर्थ है कि पानी तैरने में सहायक है। जब मछली तैरना चाहती है तब उसे पानी की सहायता लेनी ही पडती है। यदि वह न तैरना चाहे तो पानी उसे प्रेरणा नहीं देता।

### \* धर्मद्रव्य का स्वरूप

धर्मद्रव्य का स्वरूप इस प्रकार समझा जा सकता है।

\* **द्रव्य की दृष्टि से** :- धर्म द्रव्य एक अर्थात् इसके जैसा कोई दूसरा द्रव्य नहीं है, अखण्ड है - इसे विभाजित नहीं किया जा सकता, स्वतंत्र है - यह किसी पर निर्भर नहीं है और नित्य है अर्थात् हमेशा रहने वाला है।



※ क्षेत्र की दृष्टि से :- यह संपूर्ण लोक में व्याप्त है। अलोक में नहीं है, अख्यात प्रदेश वाला है।

※ काल की दृष्टि से :- अनादि अनंत एवं शाश्वत है।

※ भाव की दृष्टि से :- अमूर्त, अचेतन तथा स्वयं अगतिशील है।

※ गुण की दृष्टि से :- पदार्थ की गति के सहायक है।

**अधर्मास्तिकाय \* (Medium of Rest for Soul and Matter)**

**स्थिति सहायोअधर्म :-** जीव और पुद्गल की स्थिति (ठहरने) में उदासीन भाव से सहायक होने वाला द्रव्य अधर्मास्तिकाय कहा जाता है। जैसे वृक्ष की छाया पथिक के लिए ठहरने में निमित्त कारण होती है, इसी तरह अधर्मास्तिकाय जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक होता है।



※ द्रव्य से :- एक, अखण्ड, स्वतंत्र और नित्य है।

※ क्षेत्र से :- संपूर्ण लोकव्यापी है, अख्यांत प्रदेशवाला है।

※ काल से :- अनादि, अनंत एवं शाश्वत है।

※ भाव से :- अमूर्त, अचेतन तथा अगतिशील है।

※ गुण से :- स्थिर होने में सहायक है।

**\* आकाशास्तिकाय \* (Space)**

**आकाशास्यावगाह :-** अवगाह प्रदान करना अर्थात् स्थान देना आकाश का लक्षण है। जो द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल को स्थान या आश्रय देता है उसे आकाशास्तिकाय कहा जाता है। जैसे दूध शक्कर को अवगाह देता है अथवा भीत खूंटी को अवगाह देती है। यह सब द्रव्यों का आधार भूत हैं। और सबको अपने में समाहित कर लेता है। इसके दो भेद हैं।

1. लोकाकाश और 2. अलोकाकाश

धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव यह पाँच द्रव्य जिसमें है वह लोकाकाश हैं। जिसमें ये पाँच द्रव्य नहीं है, केवल आकाश ही हैं, वह अलोकाकाश है।

※ द्रव्य से :- एक, अखण्ड, स्वतंत्र, और नित्य है।

※ क्षेत्र से :- संपूर्ण लोक प्रमाण और अलोक प्रमाण ! लोकाकाश के प्रदेश अख्यांत है और अलोकाकाश के प्रदेश अनंत है।

※ काल से :- अनादि, अनंत और शाश्वत है।

※ भाव से :- अमूर्त, अचेतन, स्वयं अगतिशील है।

※ गुण से :- स्थान देना।



## \* काल \* (Time)

“वर्तना लक्खणों कालों” वर्तना का अर्थ है परिणमन में निमित्त होना। जो द्रव्यों के परिणमन में निमित्त कारण है। अर्थात् नयों को पुराना और पुराने को नष्ट करे उसे काल कहते हैं। जीव और पुद्गल में समय समय पर जो जीर्णता उत्पन्न होती है, जो समय समय पर भिन्न भिन्न अवस्थाएँ दिखाई देती है, वह काल द्रव्य की सहायता के बिना नहीं हो सकती। जैसे :- चावल भात के रूप के, केरी आम के रूप में, बचपन जवानी और बुढ़ापे के रूप में, नई वस्तु पुरानी वस्तु के रूप में ये समस्त प्रक्रियाएँ काल के कारण ही होती है। आयुष्य का मान और छोटे - बड़े का व्यवहार भी काल से ही होता है।

### \* काल के दो विभाग \*

1. निश्चयकाल :- जिस कारण से द्रव्य में (परिणमण) वर्तना होती है। उसे निश्चय काल कहते हैं।



2. व्यवहारकाल :- जिस कारण से जीव और पुद्गल में नया - पुराना, छोटा - बड़ा आदि व्यवहार दिखाई देते हैं उसे व्यवहारकाल कहते हैं। समय अवलिका, घड़ी, मास, वर्ष आदि समस्त व्यवहार काल के रूप हैं। व्यवहार काल को ढाई - द्वीप प्रमाण कहा है। मनुष्यक्षेत्र में ही होता है।

\* द्रव्य से :- अनंत है।

\* क्षेत्र से :- व्यवहारकाल :- ढाई द्वीप प्रमाण। निश्चयकाल :- लोक - अलोक व्यापी

\* काल से :- अनादि अनंत है।

\* भाव से :- अमूर्त है, अचेतन है।

\* गुण से :- वर्तना गुण।



## \* काल का स्वरूप \*

समय = ज्ञानियों की दृष्टि में जिसके दो भाग न हो अथवा जो कभी विभाजित न हो सके ऐसे सूक्ष्मतम कालांश को "समय" कहते हैं। कोई शक्तिशाली व्यक्ति अत्यंत जीर्ण वस्त्र को फाड़े उस वक्त एक रेशे के बाद दूसरा रेशा फटने में वैसे असंख्य समय बीत जाते हैं।

सूक्ष्म से सूक्ष्म (अविभाज्य) काल : समय

असंख्यात समय : एक आवलिका

256 आवलिका : एक क्षुल्लकभव (निगोद का जीव इतने - समय में एक भव पूरा करता है।)

17 से अधिक क्षुल्लकभव : एक श्वासोश्वास (स्वस्थ युवान का प्राण)

7 श्वासोश्वास : एक स्तोक

7 स्तोक : एक लव

77 लव : एक मुहूर्त

3773 श्वासोश्वास : एक मुहूर्त

48 मिनिट : एक मुहूर्त

2 घड़ी : एक मुहूर्त

65536 क्षुल्लकभव : एक मुहूर्त

1,67,77,216 : एक मुहूर्त

30 मुहूर्त : एक अहोरात्र

15 अहोरात्र : एक पक्ष

2 पक्ष : एक मास

2 मास : एक ऋतु

6 मास : एक अयन

12 मास : एक वर्ष

5 वर्ष : एक युग

84 लाख वर्ष : एक पूर्वांग

84 लाख पूर्वांग : एक पूर्व

70560 अरब वर्ष : एक पूर्व

असंख्य वर्ष : एक पल्योपम

10 कोटाकोटि (करोड़ × करोड़) पल्योपम : एक सागरोपम

10 कोटा कोटी सागरोपम : एक उत्सर्पिणी / अवसर्पिणी

20 कोटा कोटी सागरोपम : एक कालचक्र

अनंत कालचक्र : एक पुद्गल परावर्त

अनंत पुद्गल परावर्त काल : भूतकाल

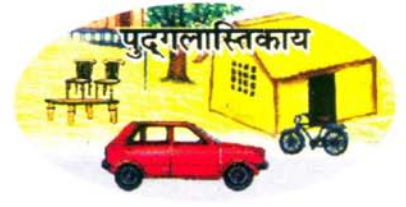
भूतकाल से अनंत गुण : भविष्य काल



- एक समय : वर्तमान काल  
 भूत, भविष्य, वर्तमान काल : अद्धाकाल, सर्व अद्धाकाल  
 जधन्य अन्तर्मुहूर्त : 6 समय का काल  
 मध्यम अन्तर्मुहूर्त : 10 समय से मुहूर्त के अंतिम समय के पहले का एक समय तक का काल  
 उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त : मुहूर्त में मात्र एक समय शेष रहे वैसा काल

### \* पुद्गलास्तिकाय \*

पुद्गल शब्द में दो पद हैं - "पुद्" और "गल"। "पुद्" का अर्थ है पूरा होना या मिलना और "गल" का अर्थ है गलना या मिटना। जो द्रव्य प्रतिपल, प्रतिक्षण मिलता है, बिछुडता है, बनता - बिगडता रहे, टूटता - जुडता रहे, वही पुद्गल है। यह एक ऐसा द्रव्य है जो खण्डित भी होता है और पुनः परस्पर सम्बद्धे भी। पुद्गल की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उसे छुआ जा सकता है, चखा जा सकता है, सूँघा जा सकता है और देखा जा सकता है। उसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये चारो अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं।



इस प्रकार पुद्गल विविध ज्ञानेन्द्रियों का विषय बनता है। अतः उसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के कारण वह रूपी अथवा मूर्त कहा गया है।

### \* पुद्गल का लक्षण \*

नव तत्त्वों की गाथा में पुद्गल के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं।

**संद्ध्यार उज्जोअ, पभा छायातवेहि अ। वण्ण - गंध - रसा - फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं॥**

शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ये पुद्गलों के लक्षण है।



**शब्द** :- अर्थात् ध्वनि, आवाज या नाद। यह सचित, अचित तथा मिश्र शब्द के भेद से तीन प्रकार का है।

**सचित शब्द** :- जीव मुख से निकले वह सचित शब्द है।

**अचित शब्द** :- पाषाणादि दो पदार्थों के परस्पर टकराने से होनेवाली आवाज अचित शब्द है।

**मिश्र शब्द** :- जीव के प्रयत्न से बजने वाली वीणा, बांसुरी आदि की आवाज मिश्र शब्द है।

\* **अंधकार** :- प्रकाश का अभाव अंधकार है। यह भी एक पौद्गालिक पदार्थ है जो देखने में बाधक बनता है।





\* **उद्योत** :- शीत पदार्थ के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं। चंद्र, गृह, नक्षत्र, तारा इत्यादि पदार्थ तथा जुगनू आदि जीवों के शीतल प्रकाश को उद्योत कहते हैं।

\* **प्रभा** :- सूर्य - चंद्र के प्रकाश से जो दूसरी किरण रहित उप प्रकाश पडता है, वह प्रभा है। यदि प्रभा न हो तो सूर्यादि की किरणों का प्रकाश जहाँ पडता हो, वही केवल प्रकाश रहता और उसके समीप के स्थान में ही अमावस्या का गाढ अंधकार व्याप्त रहता। परंतु उपप्रकाश रूप प्रभा के होने से ऐसा नहीं होता है।



\* **छाया** :- दर्पण, प्रकाश अथवा जल में पडने वाला प्रतिबिंब छाया कहलाती है।

\* **आतप** :- शीत वस्तु का उष्ण प्रकाश आतप कहलाता है। इस कर्म का उदय उन्हीं जीवों को होता है, जिनका शरीर स्वयं तो ठंडा है लेकिन उष्ण प्रकाश करते हैं। जैसे सूर्य का विमान एवं सूर्यकांतादि रत्न स्वयं शीत है परंतु प्रकाश उष्ण होता है। आतप नाम कर्म का उदय अग्रिकाय के जीवों को नहीं होता बल्कि सूर्यबिंब के बाहर पृथ्वीकायिक जीवों को ही होता है।



\* **वर्ण** :- जिस कर्म के उदय से शरीर में कृष्ण और आदि वर्ण (रंग) हो उसे वर्ण कहते हैं। इसके 5 भेद हैं - काला, नीला, पीला, लाल और श्वेत



\* **गंध** :- ध्राणेन्द्रिय के विषय को गंध कहते हैं। इसके 2 भेद हैं :- 1. सुरभि (सुगंध) और 2. दुरभि (दुर्गन्ध)

\* **रस** :- रसनेन्द्रिय के विषय को रस कहते हैं। इसके 5 भेद हैं :- तीखा, कडवा, कसैला, खट्टा और मीठा।

\* **स्पर्श** :- जो स्पर्शनेन्द्रिय का विषय हो वह स्पर्श कहलाता है। इसके 8 भेद हैं।

कर्कश (कठोर), कोमल, हल्का, भारी, ठंडा, गर्म, रुखा और चिकना। पुद्गल का अत्यंत सूक्ष्म रूप है 'परमाणु'। यह इतना सूक्ष्म है कि इसका कोई विभाग (टुकड़ा) नहीं हो सकता। दो परमाणु से लेकर संख्यात, असंख्यात अनंत परमाणुओं के मिलने से जो समूह बनता है उसे स्कंध कहा जाता है।



\* **द्रव्य से** :- अनंत द्रव्य

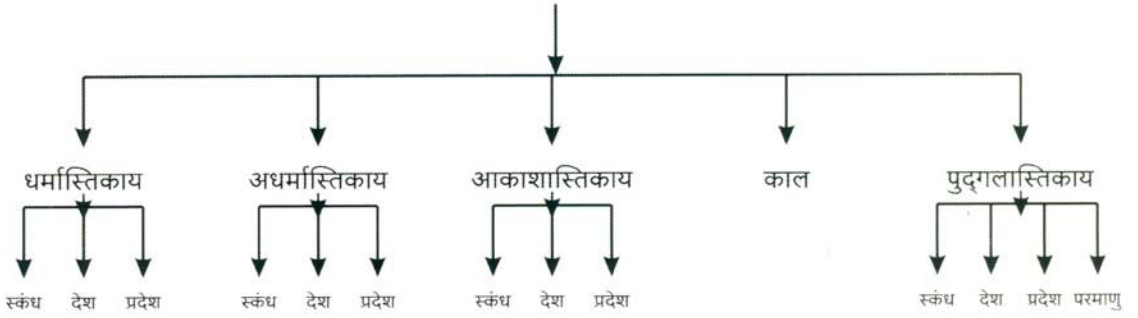
\* **क्षेत्र से** :- संपूर्ण लोक प्रमाण ! असंख्यात, अनंत प्रदेशी है।

\* **काल से** :- अनादि, अनंत और शाश्वत है।

\* **भाव से** :- रूपी है, अजीव है।

\* **गुण से** :- पूरण, गलन, विध्वंसन।

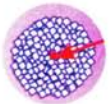
### \* अजीव के 14 भेद \*



\* **स्कंध** :- परमाणुओं के समूह को स्कंध कहते हैं अथवा अनेक प्रदेश वाले एक पूरे द्रव्य को स्कंध कहते हैं। जैसे अनेक दानों से बना हुआ मोतीचूर का अखंड लड्डु।



\* **देश** :- स्कंध का एक भाग जो विभाजन योग्य हो। जैसे अनेक कणों वाले मोतीचूर के लड्डु का एक भाग।



\* **प्रदेश** :- स्कंध का सबसे सूक्ष्म अंश जो विभाजित नहीं हो सके। जैसे अनेक कणों वाले मोतीचूर के लड्डु का एक अविभाज्य कण।



\* **परमाणु** :- संपूर्ण वस्तु से अलग हुआ (स्वतंत्र अस्तित्व वाला) एक सूक्ष्म अविभाजित अंग। जैसे लड्डु से प्रथक् हुआ निर्विभाज्य (जिसका विभाजन नहीं हो सके) कण परमाणु है। अणु जब स्कंध से जुड़ा रहे तो प्रदेश कहलाता है और अलग हो जाय तब परमाणु कहलाता है।

## \* पुण्य तत्व \*

नव तत्वों में जीव और अजीव के बाद तीसरा तत्त्व, पुण्य है। सांसारिक जीव जब तक मुक्त अवस्था को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक कर्म उसके जीवन में आते जाते रहते हैं। संयोगी केवली अवस्था तक (13वें गुणस्थान) कर्मों का आवागमन जारी रहता था क्योंकि जब तक जीव के साथ शरीर है तब तक उसे शरीर से कोई न कोई क्रिया करनी पड़ती है। संसार के प्रत्येक जीव को चाहे द्रव्य मन और द्रव्य वचन न भी हो किंतु तन तो उसके साथ जन्म - जन्मांतर तक लगा रहता है।

तन से प्रवृत्ति करते समय या तो आत्मा शुभ - भावों में संलग्न होती या अशुभ भावों से युक्त होती। अगर शुभ भावों से युक्त होती तो शुभ कर्मों के आगमन को आमंत्रित करती और अशुभ भावों से युक्त होती तो अशुभ कर्मों को आमंत्रित करती है। स्पष्ट है मानसिक, वाचिक या कायिक कोई भी प्रवृत्ति करते समय जीव यदि शुभ भावों में युक्त होता है तो पुण्य कर्म के बीज बोता है और अशुभ भावों से युक्त होता है तो पाप कर्म के बीज बोता है।

### \* पुण्य की व्याख्या \*

**पुण्य - शुभ करोति पुनोत्ति वा पवित्री करोत्यात्मानम् इति पुण्यम्** - अर्थात् जो आत्मा को शुभ करता है अथवा उसे पवित्र बनाता है, जिसकी शुभ प्रकृति हो, जिसका परिणाम मधुर हो, जो सुख - संपदा प्रदान करें, उसे पुण्य कहते हैं। तत्वार्थ सूत्र में कहा गया है

**शुभ पुण्यस्थ** - अर्थात् शुभ योग पुण्य का आश्रय है। सारी शुभ प्रवृत्तियाँ और शुभ प्रकृतियाँ पुण्य के अंतर्गत समाविष्ट हो जाती हैं, संसार में जो कुछ भी शुभ है, वह सब पुण्य और पुण्य के फल में अन्तर्निहित है। अतः पुण्य आत्मा के लिए उपकारक है, यहाँ तक कि तीर्थकरत्व की प्राप्ति का कारण भी तीर्थकरत्व नामक पुण्य प्रकृति है।

### \* पुण्य के नौ प्रकार \*

पुण्य उपार्जन करने के लिए शास्त्रकार ने नव प्रकार बताए हैं।



1. **अन्न पुण्य** :- शुभ भाव से निस्वार्थ भावनापूर्वक भूखे को भोजनादि देकर उसकी भूख मिटाने से पुण्य बंध होता है, वह अन्न पुण्य है, उसमें विधि, द्रव्य, दाता और पात्र लेने वाले को वैशिष्ट्य से पुण्य बंध में विशिष्टता आती है।



2. **पान पुण्य** :- प्यासे को शुभभाव से पेयजल पिलाकर उसकी प्यास शांत करने से जो पुण्य प्रकृति का बंध होता है वह पान पुण्य है।



3. **लयण पुण्य** :- बेघरबार एवं निरक्षित को आश्रय के लिए मकान आदि स्थान देने से पुण्य प्रकृति का जो बंध होता है वह लयण पुण्य है।



**4. शयण पुण्य :-** पाट, पाटला, शय्या, बिछौना, चटाई आदि शयनीय सामग्री देने से जो पुण्य बंध होता है, वह शयण पुण्य है।

**5. वस्त्र पुण्य :-** सर्दी, गर्मी, वर्षा से पीडित व्यक्ति को इनसे रक्षा के लिए वस्त्रों का दान करने से जो पुण्य बंध होता है वह वस्त्र पुण्य है।



**6. मन पुण्य :-** मन से दूसरों की, गुणीजनों की भलाई चाहने से, गुणियों के प्रति तुष्टि - प्रमोद भावना रखने से मन पुण्य होता है।

**7. वचन पुण्य :-** वचनों द्वारा गुणीजनों का कीर्तन करने से उनकी प्रशंसा करने से तथा हित - मित - प्रिय वचन बोलने से वचन पुण्य होता है।



**8. काय पुण्य :-** रोगी, पीडित, दुखित एवं संतप्त व्यक्तियों की शरीर द्वारा सेवा करने से, अन्य जीवों को साता पहुँचाने से, पराया दुःख दूर करने से गुणीजनों की सेवा - शुश्रुषा पर्युपासना करने से जो पुण्य प्रकृति का बंध होता है वह काय पुण्य है।

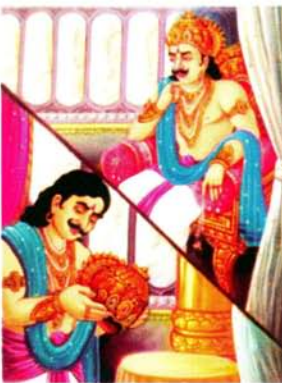


**9. नमस्कार पुण्य :-** पंच परमेष्ठि आदि योग्य पात्र को नमस्कार करने से एवं सबके साथ विनम्र व्यवहार करने से जो पुण्य - प्राकृति का बंध होता है, वह नमस्कार पुण्य है।



**\* पुण्य के दो भेद हैं :-**

**1. पुण्यानुबंधी पुण्य**



**2. पापानुबंधी पुण्य**

**1. पुण्यानुबंधी पुण्य :-** जो पुण्य, पुण्य की परंपरा को चला सके, अर्थात् जिस पुण्य को भोगते हुए नवीन पुण्य का बंध हो वह पुण्यानुबंधी पुण्य है। उदाहः एक मानव को पूर्व भव के पुण्य से सभी प्रकार के सुख साधन प्राप्त हुए तथापि मोह से उसमें पागल न बनकर आत्मा हित के उद्देश्य से वह मुक्ति की अभिलाषा रखता है, पूर्व पुण्य का उपभोग करता हुआ नवीन पुण्यों का बंध करता है वह पुण्यानुबंधी पुण्य है। जैसे सुबाहुकुमार एवं भरत चक्रवर्ती आदि के पूर्वोपार्जित पुण्य से चक्रवर्तित्व पाया और फिर उससे भी श्रेष्ठ स्थिति मुक्ति प्राप्त की।





**2. पापानुबंधी पुण्य** :- जो पुण्य नवीन पाप बंध का कारण हो अर्थात् पूर्वोपार्जित पुण्य प्रकृति के कारण वर्तमान में तो शुभ सामग्री प्राप्त हुई हो परंतु मोह की प्रबलता से असदाचारी बनकर पाप करना। आगामी भव में जो अशुभ सामग्री की प्राप्ति का कारण बने वह पापानुबंधी पुण्य है। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को पूर्ण पूण्य से चक्रवर्तित्व प्राप्त हुआ किंतु तीव्र भोगासक्ति के कारण उसे नरक में जाना पडा।



पुण्य क्रिया किये बिना पाप क्रिया रुक नहीं सकती। जब तक जीवन में पाप क्रिया चालु है तब तक पुण्य क्रिया की आवश्यकता है। पाप आत्मा को मलिन करता है। पुण्य आत्मा को पवित्र बनाता है।

पुण्य कार्य करने में ख्याल रखना अत्यंत जरूरी है कि हमें पुण्य कार्य के बदले में किसी भौतिक सुख या पदार्थ की कामना करने की नहीं है। केवल आत्मकल्याण के शुभ उद्देश्य से ही पुण्य कार्य होता है। दूसरी इच्छा रखने से वह पुण्य का फल सीमित और संसार सर्जक बन जाता है। पुण्यानुबंधी पुण्य आत्मा को मोक्ष योग्य सभी सामग्री अनुकूलता प्रदान करके मार्गदर्शन की तरह अपनी मुदत तक रहकर वह वापस चला जाता है। आत्मा को वह संसार में रोक नहीं सकता।

### ※ पुण्य की हेय - ज्ञेय उपादेयता

पुण्य तत्व को खुब गहराई से समझना चाहिए। यह ऐसा तत्व है जो विविध भूमिकाओं में उपादेय (ग्रहण करना) ज्ञेय (जानना) और हेय (छोडना) बन जाता है। सर्व विरति चारित्र प्राप्ति की पूर्व भूमिकाओं में पुण्य तत्व उपादेय है क्योंकि पंचेन्द्रियत्व, मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, सुदेव, सुगुरु - सुधर्म की सभी सामग्री आदि पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होती। जब तक पुण्य का सहारा नहीं लिया जाता तब तक यह सामग्री प्राप्त नहीं होती। इस सामग्री के अभाव में संयम की प्राप्ति नहीं हो सकती। संयम स्वीकार करने के पश्चात् संयमावस्था में पुण्य तत्व ज्ञेय एवं उपादेय है। चारित्र की पूर्णता होने पर अर्थात् 14वें गुणस्थान में वह हेय हो जाता है, क्योंकि शरीर को छोडे बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे समुद्र के एक पार से दूसरे पार जाने के लिए जहाज पर चढना आवश्यक होता है और किनारे के निकट पहुँचकर उसका त्याग करना भी उतना ही आवश्यक है। दोनों का अवलम्बन लिए बिना पार पहुँचाना संभव नहीं हैं। इसी प्रकार प्राथमिक भूमिका में पुण्य तत्व को अपनाना आवश्यक है और आत्म विकास की चरम सीमा के निकट पहुँचने पर उसे छोड देना भी आवश्यक है। जहाज में बैठे हुए व्यक्ति के लिए वह ज्ञेय है और उपादेय है हेय नहीं। संसार रुपी समुद्र से पार होने के लिए पुण्य रुपी जहाज की आवश्यकता है, किंतु 14वे गुणस्थान में पहुँचाने के पश्चात् मोक्ष प्राप्ति के समय पुण्य हेय हो जाता है।

## \* पाप तत्व \*

पुण्य का प्रतिपक्षी तत्व पाप है, पाप शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए स्थानांग सूत्र की टीका में कहा गया है -

**पाशयाते गुण्डयत्यात्मान पातयति चात्मनः आनन्दरसं शोषयाते क्षपयतीति पापम्**

अर्थात् : जो आत्मा को जाल में फंसावे अथवा आत्मा को गिरावे या आत्मा के आनन्दरस को सुखावे, जो बांधते समय सुखकारी किंतु भोगते समय दुःखकारी हो वह पाप है। संसार में जो कुछ भी अशुभ है वह सब पाप है।

कहा जाता है :- **पापयति आत्मानं इति पापम्**

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिस प्रवृत्ति से आत्मा का पतन हो, हानि हो, अहित हो वह दोष है, वह पाप है।

**\* पाप के दो प्रकार हैं :**

**1. द्रव्यपाप**

**2. भाव पाप**

**1. द्रव्य पाप :-**

जिस कर्म के उदय से जीव दुःख का अनुभव करता है, उसे द्रव्य पाप कहते हैं।

**2. भाव पाप :-**

जिस कर्म के उदय से जीव के अशुभ परिणाम हो, उसे भाव पाप कहते हैं।

**\* पाप के अन्य दो भेद :**

**1. पापानुबंधी पाप**

**2. पुण्यानुबंधी पाप**

**1. पापानुबंधी पाप :-**

जिस पाप को भोगते समय नया पाप बँधता है वह पापानुबंधी पाप है, जैसे कसाई, मच्छीमार आदि पूर्वभव में पाप किये जिससे इस भव में दरिद्रता आदि कष्ट उन्हें प्राप्त हो रहे हैं और इस पाप को भोगते समय नवीन पापों का बंध कर रहे हैं। अतः वह पापानुबंधी पाप है।

जैसे कोई मनुष्य अपने अशुभ घर से निकलकर उससे भी अधिक अशुभ घर में प्रवेश करता है, उसी तरह



जो व्यक्ति अपने वर्तमान अशुभ भव में महापाप कर्म का आचरण करके नरकादि भव में जाता है तो वह पापानुबंधी पाप का परिणाम है।

कालसौकरिक कसाई पूर्वजन्मों के घोर पापों के फलस्वरूप कसाई कुल में उत्पन्न हुआ। रोज 500 भैंसे मारकर अपना धंधा

करता था। राजा श्रेणिक ने उससे हिंसा छुड़ाने के लिए कुएँ में उतार दिया। परंतु कालसौकरिक कुएँ में बैठा - बैठा भी अपने शरीर के पसीने के मैल से भैंसे बनाकर मारता रहा।



**1. पुण्यानुबंधी पाप :-**

जिस पाप को भोगते समय नवीन पुण्योपार्जन होता है उसे पुण्यानुबंधी पाप कहते हैं। जो जीव पूर्वभव में किये हुए पाप के कारण इस समय दरिद्रता आदि का दुःख भोग रहे हैं, किंतु सत्संग आदि के कारण विवेक पूर्वक कार्य करके पुण्योपार्जन करते हैं वे पुण्यानुबंधी पाप वाले कहलाते हैं।

जैसे कोई व्यक्ति अशुभ घर से निकलकर शुभ घर में प्रवेश करता है उसी तरह जो जीव वर्तमान भव में

अशुभ का अनुभव करके सद्धर्म का आचरण करता हुए आगामी भव के लिए शुभ अनुभाव की भूमिका तैयार करता है, वह पुण्यानुबंधी पाप कहा जाता है।



रोहिणीया चोर एक बार चोरी करने जाते हुए भगवान महावीर के समवसरण के पास से निकला। भगवान के वचन कानों में नहीं पड़े इसलिए कानों में अंगुली डाल ली। पिता की सीख थी कि महावीर की वाणी कभी मत सुनना। उसी समय पाँव में काँटा चुभ गया। काँटा निकालने के लिए हाथ कानों से हटाने पड़े और उस समय भगवान की वाणी कानों में पड़ी। जिसमें देवताओं की पहचान बताई जा रही थी। भगवान की वाणी भूलने की कोशिश की, परंतु वह तो

और पक्की याद हो गयी।

एक समय अभयकुमार ने बड़ी योजनापूर्वक उसे पकड़ लिया। कृत्रिम देवलोक जैसे वातावरण में उसे रखा ताकि वह अपने को स्वर्ग में उत्पन्न समझकर पूर्वजन्म में किये पुण्य-पाप का लेखा-जोखा बता दे। भगवान के वचनानुसार रोहिणीया जान गया कि यह अप्सराएँ जैसी नारियाँ देवी नहीं हो सकती। जरूर कोई धोखा है। वह बच गया। फिर उसे भगवान महावीर के वचनों पर दृढ़ विश्वास हुआ और उसने भगवान के पास दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया। पाप भोगते हुए भी उसने पुण्य का बंध कर लिया।



### ※ पाप के 18 प्रकार :-

पाप के कारण भी अनेक हैं, तथापि संक्षेप में पाप उपार्जन के अठारह कारण माने गये हैं, उन्हें पापस्थान भी कहते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं।

1. **प्राणातिपात** :- प्राण+अति+पात = प्राणातिपात - प्राण गिराना, प्राण विनष्ट करना। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है :- **प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा**। अर्थात् प्रमाद और योग से प्राण समाप्त करना हिंसा है। प्राण दस है - पाँच इन्द्रियाँ, मन वचन काया, श्वासोश्वास एवं आयुष्य। इनमें से किसी भी प्राण का हनन करना हिंसा या प्राणातिपात है



जैसे मारना, पीटना, कष्ट देना, अपमान करना, कटुवचन बोलना, युद्ध करना, शस्त्रों का निर्माण करना, शक्ति से अधिक श्रम लेना, नकली दवाइयाँ बनाना, प्रसाधन सामग्री के लिए पशु-पक्षियों को पीड़ा पहुँचाना, अत्याचार करना, मध - माँस का आहार करना, हिंसा के व्यवसायों को प्रोत्साहन समर्थन देना आदि सभी उत्पीडक कार्य हिंसा के ही विविध रूप हैं। **प्राणातिपात दो प्रकार के हैं :- 1. स्व - प्राणातिपात 2.**

**पर - प्राणातिपात**

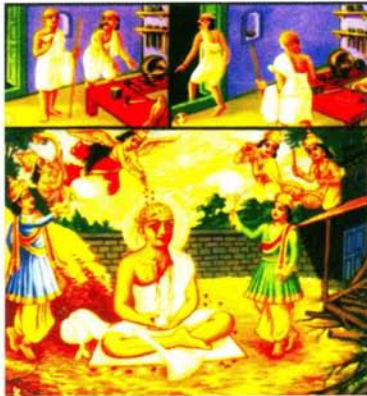
※ **स्व प्राणातिपात** भी द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो प्रकार है, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग - द्वेष आदि



दूषित भावों से अपने क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष आदि गुणों का अतिपात होना, घात होना **स्व प्राणातिपात** है। विषय कषाय के सेवन में अपनी इन्द्रियों की प्राणशक्ति का हास होना द्रव्य स्व प्राणातिपात है।

✽ **पर प्राणातिपात** भी दो प्रकार का है। अपने क्रूरता, कठोरता, निर्दयता आदि दुर्व्यवहार से दूसरों के हृदय को आघात लगाना, उनमें शत्रुता, द्वेष, संघर्ष का भाव पैदा हाना पर **भाव - प्राणातिपात** है। दूसरों के शरीर, इन्द्रिय आदि प्राणों का हनन करना पर द्रव्य - प्राणातिपात है।

**2. मृषावाद :-** मृषा+वाद = मृषावाद - मृषा अर्थात् असत्य । वाद अर्थात् कथन, असत्य कथन करना। जो बात जैसी देखी है, सुनी है व जानते है उसे उसी रूप में न कहकर विपरीत रूप में या अन्य रूप में कहना **मृषावाद** है। धरोहर व गिरवी की वस्तु हड़प जाना, कूट साक्षी देना, मृषा उपदेश देना, उत्तेजनात्मक भाषण देना, जनता को ठगना, हानिकारक वस्तु को गुण युक्त लाभकारी वस्तु कहकर बेचना, नाप तोल में झूठ बोलना, झूठे विज्ञापन देना, वादे से मुकर जाना, स्वार्थ के लिए अपने वचन को पलट देना आदि मिथ्या भाव आना भी **मृषावाद** है।



भाषा सत्य हो, हितकारी हो, प्रिय हो और मधुर हो। किसी के प्राणों पर संकट आता हो तो उस समय साधक को सत्य वचन भी उच्चारित नहीं करना चाहिए। हिंसा का निमित्त बने, ऐसा सत्य भी सत्य नहीं कहा गया। मेतार्य मुनि ने क्रौंच पक्षी को स्वर्णमय कन चुगते हुए देख लिया था। किंतु सुनार के पूछने पर वे मौन रहे। सुनार ने क्रुद्ध होकर मेतार्य मुनि को गीले चमड़े से बाँधकर धूप में बैठा दिया - नसे, हड्डियाँ आदि चमड़े के सूखने के साथ चरमराने लगी। अपने प्राण विसर्जित कर दिये पर क्रौंच पक्षी के प्राणों पर करुणा कर मुनि ने मुँह नहीं खोला। धन्य मुनिराज!!...

**3. अदत्तादान :-** अ+दत्त+आदान = अदत्तादान - बिना दिया हुआ लेना, वस्तु के स्वामी की आज्ञा के बिना वस्तु ग्रहण करना **अदत्तादान** है। परायी स्त्री, वस्तु, भूमि, धन आदि का अपहरण करना, बिना पूछे लेना, डरा धमकाकर लूटना, अन्याय, अनीति से द्रव्य उपार्जन करना, अच्छी वस्तु दिखाकर बुरी वस्तु देना, वस्तु में मिलावट करना, पुरस्कार का लोभ देकर फंसाना आदि चोरी के अनेक रूप हैं।



जब आसक्ति तीव्र हो, लोभ या इच्छा प्रबल हो, तब चोरी जैसा कुकृत्य होता है। पैर में काँटा चुभ जाने पर या हाथ की अंगुली कट जाने पर जैसे प्रतिसमय वेदना होता है वैसे ही

चोरी करने पर भय, व्याकुलता, अशांति का वेदन होता है। चोरी के परिणाम स्वरूप जीव त्रिकाल में दुःख प्राप्त करता है। चोरी से पूर्व योजना बनाने में आसक्ति, तृष्णा का महादुःख, चोरी करते समय भय, कंपन, बेचैनी, घबराहट एवं चोरी के पश्चात् इहलोक में फाँसी, कैद तथा परलोक में नीच कुल, पशु- पक्षी जीवन, नारकीय जीवन आदि में दुःख प्राप्त करता है।



4. **मैथुन** :- विभाव एवं विकारों में रमण करना । पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त बनकर काम - विकार में प्रवृत्त होना, संभोग करना मैथुन है।

रति क्रीडा, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, अश्लील फिल्म देखना, तीव्र नशीले वस्तुओं का सेवन कर कामोत्तेजन करना, नग्न नृत्य देखना आदि मैथुन के अनेक रूप हैं।

5. **परिग्रह** :- आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करना तथा उन पर ममत्व मूर्च्छाभाव रखना परिग्रह है। परिग्रह दो प्रकार का बताया गया है 1. बाह्य और 2. अभ्यंतर। धन, धान्य, क्षेत्र, वस्तु, सोना, चांदी, द्विपद, चतुष्पद आदि नौ प्रकार का बाह्य परिग्रह है एवं मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, तीन वेद ये चौदह प्रकार का अभ्यंतर परिग्रह है। इस प्रकार कषायों को परिग्रह की संज्ञा दी गयी है। दशवैकालिक सूत्र के अनुसार आसक्ति ही वास्तविक परिग्रह है और परिग्रह पाप का मूल कारण है। आचारंग सूत्र में कहा है :- "अर्थलोभ व्यक्ति परिग्रह की पूर्ति हेतु दूसरों का वध करता है, उन्हें कष्ट देना, तथा अनेक प्रकार से यातनाएँ पहुँचाता है।" अतः परिग्रह महापाप है।



6. **क्रोध** :- आवेश में आकर असंतुलित प्रतिक्रिया करना। किसी अप्रिय व्यवहार के कारण मन में जो उत्तेजना तथा उग्रता आती है, वह क्रोध है। अपनी मनचाही स्थिति नहीं होने पर अथवा अनचाही होने पर गुस्सा करना, खिन्न होना, गाली देना, बुरा-भला कहना, गुस्से में कर्तव्य - अकर्तव्य का भान भूल जाना, गुस्से से होठों का फड़कना, आँखे लाल होना आदि क्रोध के अनेक रूप हैं।



7. **मान** :- घमंड या अहंकार करने को मान कहते हैं। किसी वस्तु, धन, सम्मान व कीर्ति की प्राप्ति होने पर मन में जो अहंकार का भाव आता है, वही मान है। जाति, कुल, बल, रूप, ऐश्वर्य, ज्ञान, तप और लाभ ये 8 प्रकार का मद करना। सम्मान और अभिनंदन चाहना मान के प्रकार है। मान करने वाला व्यक्ति अपने आपको श्रेष्ठ एवं अन्य को छोटा, तुच्छ समझने लगता है। जैसे लंकापति रावण द्वारा प्रयास करने पर भी सीता जब विचलित नहीं हुई, तब विभीषण आदि रावण को समझाने लगे - हे ज्येष्ठवर्य ! हमारा पक्ष अन्याय, अनीतिपूर्ण है। आप सीताजी को वापस लौटाकर युद्ध

विभीषिका से बचें। यह बात सुनकर रावण फूफकार उठा - हे विभीषण ! मैं अपमान या पराजय के भय से सीता को कभी नहीं लौटाऊंगा। दुनिया कहेगी भयभीत हो गया। इतिहास साक्षी है कि रावण ने उस मान के वशीभूत हो लंका का नाश कर दिया।



**8. माया :-** कपटपूर्ण व्यवहार

**माया** कहलाती है। मन में कुछ, वचन में कुछ एवं काया से कुछ भिन्न प्रवृत्ति। इस प्रकार का दुहरा भाव या लुकाव-छिपाव माया है। अपने

स्वार्थ के लिए दूसरों को भुलावे में डालना, दूसरों से लेख व पुस्तके लिखवाकर उस पर अपना नाम देना, ऊपर से मधुर बोलना, भीतर कटुता भरा होना, आश्वासन देकर उससे मुकरजाना, विश्वासघात करना, झूठा प्रदर्शन करना, कूटनीति करना आदि माया के अनेक रूप हैं। माया करनेवाला बगुले की तरह होता है। बगुला पानी में तैरती मछलियों को पकड़ने के लिए एक पैर पर चुपचाप

खड़ा होता है। बड़ा भला दिखकता है, परंतु उसके मन में मछलियों को खाने की घात लगी रहती है।

**9. लोभ :-** लालचपूर्ण व्यवहार **लोभ** है। अप्राप्त को प्राप्त करने की कामना और प्राप्त को बनाये रखना संचयवृत्ति लोभ है। पेट व शरीर की आवश्यकता तो बहुत सीमित होती है। परंतु लोभी तो असीम इच्छावाला होता है। चूहे की तरह वह प्रत्येक वस्तु को संग्रह करना चाहता है। चूहा जो मिला उसे बिल में ले जाकर जमा करता रहता है। इसी प्रकार लोभी की मनोवृत्ति जमा करने की होती है।



**10. राग :-** मनपसंद वस्तु पर आसक्त होना। जब

किसी पदार्थ या प्राणी के प्रति लगाव या आकर्षण पैदा होता है

तो उसे **राग** कहते हैं। संसार भ्रमण का मूल कारण है राग। जीव राग में सुख मानता है,

वस्तुतः जहा राग है, वहाँ दुख है। राग के कारण अज्ञानी जीव किसी व्यक्ति या पदार्थ

को अपना मानता है। देह राग से देह चिंता करता है, पदार्थ राग से संग्रह करता है और

परिवार राग से उनके पालन पोषण के लिए जिंदगी भर लगा रहता है। शास्त्रों में राग तीन

प्रकार का बताया गया है।

\* **स्नेह राग :-** कोई विशिष्ट गुण न होने पर भी जिसकी तरफ मन खिंचता है। उसे स्नेह राग कहते हैं। स्नेह राग व्यक्ति के प्रति होता है। बाईस्वें तीर्थकर अरिष्टनेमि भगवान की राजमती के साथ लगातार नौ भव तक स्नेह राग की परंपरा चली।

\* **काम राग :-** जिसके साथ संसार सुख भोगने की इच्छा हो, उसे काम राग कहते हैं। यह राग इन्द्रियों के विषयों में होता है। मणिरथ राजा अपने छोटे भाई युगबाहु की पत्नि मदनरेखा पर मोहित हो गया था। कामराग की उसमें इतनी तीव्रता थी कि मदनरेखा को पाने के लिए अपने छोटे भाई को मार डाला। युगबाहु के मरने के बाद भी मदनरेखा को नहीं पा सका परंतु तीव्र काम राग के कारण उसका घोर कर्मबंध हुआ और अंत में जहरीले सर्प के काटने

से वह मरकर नरक में पहुँचा।

※ **दृष्टि राग** :- अपनी पकड़ी हुई मान्यता का आग्रह करना। यह राग कुप्रवचादि या सिद्धांत से विरुद्ध मत स्थापन के प्रति होता है। जैसे गौशालक भगवान महावीर स्वामी से अलग होकर आजीवक संप्रदाय का आचार्य बन गया था। अंतिम समय में उसको पश्चाताप हुआ और मति सुधर गयी थी फिर भी दृष्टि राग के कारण उसने जन्म - परंपरा को बढ़ाया।

11. **द्वेष** :- नापसंद वस्तु पर घृणा या तिरस्कार भाव रखना **द्वेष** है। जैसे राग की परंपरा जन्म जन्म तक चलती है वैसे ही द्वेष की परंपरा भी चलती है। द्वेष भाव से संबंधित गुणसेन, अग्निशर्मा का उदाहरण समरादित्य चारित्र में प्राप्त होता है। अग्निशर्मा तापस और गुणसेन राजा दोनो बाल मित्र थे। राजा गुणसेन ने अग्निशर्मा को तीन बार मासक्षमण तप के पारणे का निमंत्रण दिया किंतु हर बार गुणसेन राजा अपनी राज्य व्यवस्था की व्यस्तता के कारण पारणे के दिन भूलता रहा और अग्निशर्मा हर बार निराश होकर लौटता रहा। इस पर वह क्रोधित होकर द्वेष की गांठ बांध ली और गुणसेन को मारने का निदान कर लिया। द्वेष भाव से निदान करके अग्निशर्मा के जीव ने गुणसेन राजा को नौ भव तक कभी माता, कभी बहन, कभी पत्नी और छोटे भाई के रूप में मारता हुआ अनेक जन्मों तक दुर्गति में परिभ्रमण करता रहा।

द्वेष



सामान्यतः अपना अहित करने वाले के प्रति द्वेष भाव आता है, परंतु कुछ प्राणियों में जन्म जात ही द्वेष या वैर भाव होता है। जैसे बिल्ली और चूहा। या साँप और नेवला आदि। साँप ने नेवले का कुछ बिगाडा नहीं, परंतु वह उसे देखते ही उस पर झपटकर मार डालता है।

कलह



12. **कलह** :- वाद - विवाद, लडाई, झगडा करना **कलह** हैं। क्रोध जब वाद - विवाद का रूप धारण कर लेता है तब कलह कहलाता हैं। जैसे ईंधन डालने से अग्नि भडकती है, वैसे ही क्रोध में प्रतिक्रिया रूप शब्द बोलते जाने से कलह हो जाता है। हाथापाई, मारपीट और खून - खराबा यह सब कलह के दुष्परिणाम है। इससे जीव अनेक भवों में अति दुःसह दुर्भाग्य को प्राप्त करता है। आत्मा में मलिनता बढ़ती है, सम्मान की हानी होती है, वातावरण दूषित होता है एवं धर्म का नाश करते हुए पाप का विस्तार करता है।

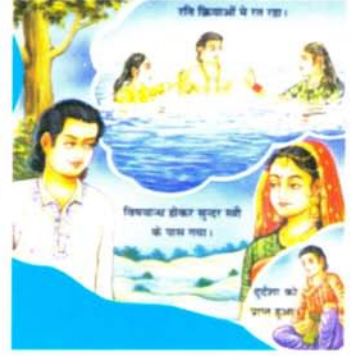
13. **अभ्याख्यान** :- दूसरों पर झूठा कलंक लगाना। कोई दुर्गुण या बुराई न होने पर भी उसे बुरा बताना अभ्याख्यान है।



14. **पैशुन्य** :- चुगली करना, इधर की बात उधर करना, दो व्यक्तियों को लडा देना, परस्पर भिडा देना आदि **पैशुन्य** के रूप हैं। पैशुन्य वृत्तिवाला भेदी प्रकृति का होता है, उसका रस दूसरों के रहस्य को खोलने में रहता

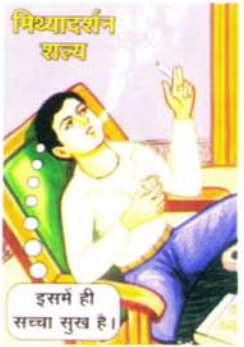
है। वह सामने तो चुप रहता है या मीठा बोलता है परंतु पीठ पीछे मच्छर की तरह कानाफूसी करता रहता है।

**15. रति - अरति :-** संयम में अरुचि और असंयम में रुचि रखना **रति - अरति** है। रति अर्थात् प्रिय संयोग में आनंद का अनुभव करना और अरति अर्थात् अप्रिय संयोग में अरुचि भाव रखना। शरीर व मन के अनुकूल विषयों के प्रति आकर्षण मोह या आसक्त होना, उन्हें प्राप्त करने की या बार - बार भोगोपभोग करने की इच्छा करना रति तथा अप्रिय, प्रतिकूल, असाताकारी विषय में उद्वेग, घृणा तथा अरुचि होना अरति है। जहाँ एक वस्तु के प्रति रति (राग) होता है, वहाँ दूसरी के प्रति अरति (द्वेष) भी होती है। इसी कारण इन दोनों को एक ही पापस्थानक माना है।



**16. पर - परिवाद :-** दूसरों की निंदा करना, विकथा करना **पर-परिवाद** है।

**17. माया मृषावाद :-** कपटपूर्वक झूठ बोला **माया मृषावाद** है। झूठ स्वयं ही पाप है। यदि उसमें कपट दोष मिल जाता है तो करेला और नीम चढे जैसे दो दोषों के कारण यह उग्र पाप बन जाता है। वेष बदलकर लोगों को ठगना, धोखाधडी करना, विश्वासघात करना आदि माया मृषावाद का कार्य है।



**18. मिथ्यात्वदर्शन शल्य :-** मिथ्यात्व युक्त प्रवृत्ति जैसे कुदेव - कुगुरु एवं कुधर्म को मानना **मिथ्यादर्शन शल्य** है। देह में आत्म बुद्धि होना। स्वभाव को विभाव और विभाव को स्वभाव मानना भी मिथ्यादर्शन है। इसे समस्त पापों का मूल बताया गया है। सब अनिष्टों की जड मिथ्या श्रद्धा है। यह शल्य (काँटों) के समान दुःख देने वाले होने से मिथ्यात्व शल्य कहा जाता है।

इन 18 प्रकार की क्रियाओं द्वारा जीव को 82 प्रकार के अशुभ कर्म का बंध होता है। जिसका विवरण नाम कर्म के अध्याय में किया जाएगा।

## \* आश्रव तत्व \*

संसार के सभी प्राणी कर्मों से युक्त हैं, प्राणियों के जीवन में प्रतिक्षण कर्मों का आवागमन चलता रहता है। जिन कर्मों का आगमन होता है, वे जीव से सम्बद्ध हो जाते हैं और देर - सवेर अपना फल देकर चले जाते हैं। फिर नये कर्म आते हैं, बंधते हैं एवं इसी तरह अपना फल भुगताकर चले जाते हैं। अल्पज्ञ जीव इस बात को नहीं जानता कि कर्म कब आया, कैसे आया और कब अपना फल देकर चला गया।

संसार के प्राणी, विशेष रूप से मानव भी प्रायः नहीं जानते और न ही जानने का प्रयत्न करते हैं कि हम इस लोक में एवं इस रूप में क्या व किस कारण से आये हैं, कहाँ से आये हैं और हमें कहाँ जाना है, जो जिज्ञासु है वे भी कर्म सिद्धांत को मात्र इस रूप में जानते हैं कि जीव जैसा शुभाशुभ कर्म करता है वैसा शुभाशुभ फल भोगता है, उनकी जिज्ञासा होती है, कर्म का आगमन क्यों और कैसे होता है ? उस कर्माश्रव का स्वरूप क्या है ? वह कितने प्रकार का है ? कर्म कैसे बिना बुलाए आते हैं और कैसे आत्मा से चिपक जाते हैं ? क्या कर्म को आते हुए रोका भी जा सकता है ? इन जिज्ञासाओं का समाधान इस प्रकार है - शुभ और अशुभ कर्मों के आगमन को जैन कर्म विज्ञान की भाषा में आश्रव कहते हैं, जिस क्रिया या प्रवृत्ति से जीव में कर्मों का स्राव (आगमन) होता है वह आश्रव है। आश्रव कर्मों का प्रवेश द्वार है।

### \* आश्रव की व्याख्या :-



पूर्वाचार्यों ने आश्रव शब्द को कई तरह से व्युत्पत्ति की है

1. आश्रवन्ति :- **प्रतिशक्ति येत कर्माण्यात्मनीत्यारन्नवः कर्म बंध हेतु रितिभावः।** (स्थानांग टीका) अर्थात् जिसके द्वारा कर्म आत्मा में प्रवेश करते हैं, वह आश्रव है। अर्थात् कर्मबंध के हेतु आश्रव है। जैसे जल में रही हुई नौका में छिद्रों द्वारा जल प्रवेश होता है, इसी प्रकार पाँच इन्द्रिय और विषय कषायादि छिद्रों से कर्मरूपी पानी का प्रवेश होना आश्रव है। तत्त्वार्थ सूत्र में आश्रव की व्याख्या करते हुए कहा गया है - **कायवांगमनः कर्म योगः । स आश्रवः** काया, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं, वही योग आश्रव है, अर्थात् कर्म का संबंध कराने वाला है। मन वचन काया के शुभ और अशुभ योग के द्वारा जो कर्म बांधते हैं, उनमें कषायों के कारण भिन्नता आ जाती है। अर्थात् योगों की समानता

होने पर भी कषाययुक्त जीवों को जो बंध होता है, वह विशेष अनुभाग वाला और विशेष स्थिति वाला होता है। कर्माश्रवों में ब्राह्म साधन समान होने पर भी कर्मबंध में अंतर हो जाता है। अतः कर्माश्रवों का आधार मुख्यतया अध्यवसाय (भाव) है। बाह्य क्रियाएँ और उनके साधन एक सीमा तक कर्मबंध के निमित्त होते हैं। मुख्य रूप से कर्मबंध अध्यवसायों पर निर्भर करता है। बाह्य क्रिया समान होने पर भी अध्यवसायों में बहुत अंतर हो सकता है।



उदाहरण के लिए एक हिंसक व्यक्ति छुरी, चाकू चलाकर घातक बुद्धि से किसी व्यक्ति को मारता है और एक डॉक्टर रोगी को स्वस्थ करने के लिए शल्य चिकित्सा (ऑपरेशन) करता हुआ छुरी, चाकू का प्रयोग करता है। उक्त दोनो व्यक्तियों ने शस्त्र, छुरी, चाकू का प्रयोग तो किया, अधिकरण (साधन) भी उनके समान हैं, परंतु दोनों के अध्यवसायों में बहुत बड़ा अंतर है। एक के अध्यवसाय हिंसक होने से संक्लिष्ट है, अशुभ है, जबकि दूसरे के अध्यवसाय शांति, आरोग्यदायक होने से शुभ है। अतएव पहला हिंसक व्यक्ति अशुभ कर्मबंध का भागी होता है, जबकि दूसरा व्यक्ति शस्त्र का प्रयोग करने पर भी मुख्यतया शुभ कर्म - पुण्यकर्म का भागी होता है।



### \* आश्रव के भेद :-

इन्द्रिय, कषाय, अन्न, क्रिया और योग ये आश्रव के मूल पाँच भेद हैं। इनके क्रमशः पाँच, चार, पाँच, पच्चीस और तीन भेद हैं। यह सब मिलाकर आश्रव के 42 भेद हो जाते हैं।

इंद्रिय - कषाय - अन्न क्रिया पण चउर पंच पणवीसा।  
जोगा तिन्नेव भवे आसवभेयाउ बायाला। (स्थानांग टीका)

### \* आश्रव के 42 भेद :-

|             |    |   |
|-------------|----|---|
| इन्द्रिय 5  | :- | स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, ध्राणेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय, श्रोतेन्द्रिय |
| कषाय 4      | :- | क्रोध, मान, माया, लोभ   |
| अन्न 5      | :- | प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह।                        |
| योग 3       | :- | मनोयोग, वचनयोग, काययोग।   |
| क्रियाएँ 25 | :- | कायिकी आदि।   |
| कुल         | :- | 42 भेद  |

इन इन्द्रियो आदि द्वारा जो कोई भी प्रवृत्ति हो, वे यदि प्रशस्त (शुभ) भावपूर्वक हो तो शुभाश्रव होता है और अप्रशस्त भावपूर्वक हो तो अशुभाश्रव होता है।

### \* 25 क्रियाएँ :-

जिस कार्य के द्वारा आत्मा शुभाशुभ कर्म को ग्रहण करती है, उसे क्रिया कहते हैं। क्रिया कर्मबंध की कारणभूत एक चेष्टा है। जब यह जीव के निमित्त से होती है तो जीव क्रिया और जब यह अजीव के निमित्त से होती है तो अजीव क्रिया कहलाती है। यद्यपि दोनो क्रियाओं में जीव का व्यापार निश्चित रूप से रहता है।

जीव क्रिया के दो भेद हैं।

#### 1. सम्यक्त्वी क्रिया

#### 2. मिथ्यात्वी क्रिया

सम्यग्दर्शन के होने पर जो क्रियाएँ होती हैं वह सम्यक्त्वी क्रिया है।  
मिथ्यादर्शन के होने पर जो क्रियाएँ होती हैं वह मिथ्यात्वी क्रिया है।

## \* अजीव क्रिया के दो भेद हैं।

### 1. ईर्यापथिक क्रिया      2. साम्परायिकी क्रिया

1. **ईर्यापथिक क्रिया** :- उपशांत कषायी (11वें गुणस्थान वाले जीव) क्षीण कषायी (12वें गुणस्थान वाले जीव) तथा सयोगी केवली (13वें गुणस्थान वाले जीव) के योग के निमित्त से होनेवाली क्रिया ईर्यापथिक क्रिया कहलाती है।

2. **साम्परायिकी क्रिया** :- जो क्रिया कषाय सहित होती है वह साम्परायिकी क्रिया कहलाती है। अर्थात् प्रथम गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान वाले सकषायी जीवों की क्रिया को साम्परायिकी कहते हैं। ईर्यापथिक क्रिया एक ही प्रकार की तथा साम्परायिक क्रिया 24 प्रकार की मानी गयी है इस प्रकार स्थानांग सूत्र, तत्त्वार्थ सूत्र, नवतत्त्व आदि में पच्चीस प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। यद्यपि सूत्रकृतांग तथा उत्तराध्ययन सूत्र में तेरह प्रकार की क्रियाएँ, क्रियास्थान या दण्डस्थान के रूप में निर्दिष्ट है किंतु ये तेरह क्रियाएँ पच्चीस क्रियाओं में समाहित है।

### \* 25 क्रियाएँ \*



1. **कायिकी क्रिया** :- अशुभ भावों के साथ की जानेवाली शारीरिक क्रिया या चेष्टा कायिकी क्रिया कहलाती है। अर्थात् बिना देखे बिना प्रमार्जना किये बैठने, सोने से, काया द्वारा जो क्रिया लगे।

2. **अधिकरणकी क्रिया** :- हिंसक उपकरण जैसे चाकू, छूरी, तलवार, बंदुक, कुल्हाडी आदि संग्रह से जो क्रिया लगे वह अधिकरणकी क्रिया है।



3. **प्राद्वेषिकी क्रिया** :- जीव, अजीव पर द्वेष या ईर्ष्या के वंशीभूत जो क्रिया की जाती है, वह प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है।



4. **पारितापनिकी क्रिया** :- अपने आपको तथा अन्य को क्रोध वगैरह द्वारा पारिताप पीडा पहुँचाने से जो क्रिया लगे वह पारितापनिकी क्रिया कहलाती है।



5. **प्राणातिपातिकी क्रिया** :- जीवों की हिंसा या घात करनेवाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया कहलाती है।



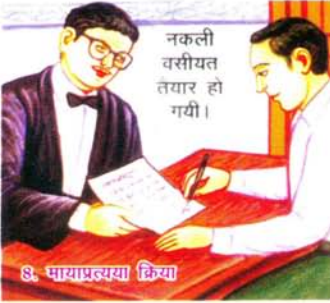


6. **आरंभिकी क्रिया** :- खेती, घर आदि आरंभ - समारंभ (जिसमें हिंसा अधिक हो) करने से जो क्रिया लगे वह आरंभिकी क्रिया है।

देखो, मैंने कितने रुपये और अभूषण इकट्ठे कर लिए।



वाह !



नकली वसीयत तैयार हो गयी।

8. **मायाप्रत्ययिकी क्रिया** :- छल कपट करके दूसरों को ठगने से, कष्ट देने से जो क्रिया लगे, वह माया प्रत्ययिकी क्रिया है।

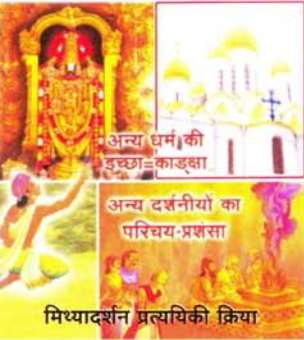


देव

वासुदेव

9. अप्रत्याख्यानप्रत्यया क्रिया

9. **अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया** :- व्रत - नियम, त्याग, प्रत्याख्यान का विरति न करने से अर्थात् संयम का घात करनेवाली पापक्रियाओं का त्याग न करना अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया कहलाती है।



अन्य धर्म की इच्छा = काखसा

अन्य दर्शनीयों का परिचय-प्रशंसा

मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया

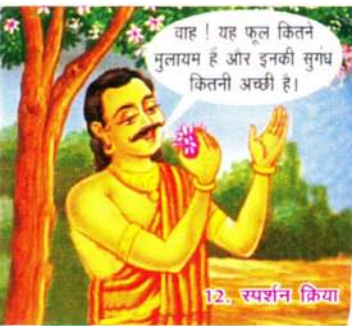
10. **मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया** :- जिनवचन पर अश्रद्धा तथा विपरीत मार्ग के प्रति श्रद्धान करने से जो क्रिया लगे वह मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया है।



देखो कितनी सुन्दर लडकी है।

11. दृष्टिका क्रिया

11. **दृष्टिका क्रिया** :- राग के साथ किसी वस्तु या दृश्यों को देखने से जो क्रिया लगती है, वह दृष्टिका क्रिया है।



वाह ! यह फूल कितने मुलायम हैं और इनकी सुगंध कितनी अच्छी है।

12. स्पर्शिकी क्रिया

12. **स्पर्शिकी (स्पर्शन) क्रिया** : राग भाव से किसी सजीव - निर्जीव वस्तु को स्पर्श करने से जो क्रिया लगे वह स्पर्शिकी क्रिया है।



आह! इस दुष्ट पत्थर को यहीं पड़ा रहना था।

13. प्रातीत्यिकी-क्रिया

(अजीव प्रातीत्यिकी)

13. **प्रातीत्यिकी क्रिया** :- जीव और अजीव रूप बाह्य वस्तु के निमित्त से जो राग - द्वेष की उत्पत्ति होती है उससे

लगनेवाली क्रिया प्रातीत्यिकी क्रिया कहलाती है।



14. सामान्तोपनिपतिकी क्रिया

14. **सामान्तोपनिपतिकी क्रिया** :- अपनी ऋद्धि-समृद्धि की प्रशंसा सुनकर खुशी होना, अथवा घी, तैल, दूध आदि से बर्तन खुले रखने से उनमें त्रस जीव आकर गिरे उससे जो क्रिया लगे वह सामान्तोपनिपतिकी क्रिया कहलाती है।

15. **स्वहस्तिकी क्रिया** :- आत्महत्या या अपने हाथों से शिकारी कुत्तों आदि से अथवा शास्त्र द्वारा जीवों की हिंसा करने से जो क्रिया लगे वह स्वहस्तिकी क्रिया है।



15. स्वहस्तिकी क्रिया



16. नैसृष्टिकी क्रिया

16. **नैसृष्टिकी क्रिया** : किसी वस्तु को बिना यतना के पटक देने से लगने वाली क्रिया नैसृष्टिकी क्रिया कहलाती है।

17. **आज्ञापनिकी क्रिया** :- किसी पर आज्ञा चलाने से या आज्ञा देकर पाप व्यापार आदि करवाने से या किसी वस्तु को मंगवाने से जो क्रिया लगे वह आज्ञापनिकी क्रिया कहलाती है।



17- आज्ञापनिका-क्रिया



18. विदारणिकी क्रिया

18. **विदारणिकी क्रिया** :- किसी वस्तु का छेदन, भेदन आदि करने से तथा किसी को गालियाँ, कलंक देने से जो क्रिया लगे वह विदारणिकी क्रिया है।

19. **अनाभोग प्रत्यया क्रिया** :- अज्ञानता से या प्रमादवश कार्य करने से जो क्रिया लगे वह अनाभोग प्रत्यया क्रिया कहलाती है।



19. अनाभोग प्रत्यया क्रिया



20. अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया

20. **अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया** :- स्वयं का हित - अहित सोचे - समझे बिना इहलोक और परलोक के विरुद्ध कार्य करना। जैसे बिना सोचे - समझे हिंसा में धर्म बताना, दंगा करना इत्यादि।

21. **प्रेम प्रत्यय क्रिया** :- प्रेम अनुराग के कारण लगनेवाली क्रिया प्रेम प्रत्यया क्रिया कहलाती है। जैसे लडका - लडकी का परस्पर प्रेम अनुराग।



21- प्रेम प्रत्यया क्रिया



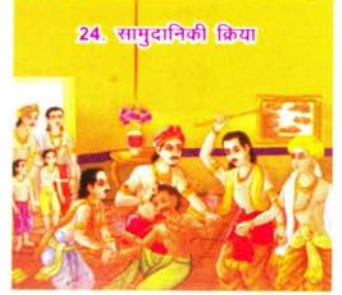
22. द्वेष प्रत्यया क्रिया

22. **द्वेष प्रत्यय क्रिया** :- द्वेष भाव से लगनेवाली क्रिया द्वेष प्रत्यय क्रिया कहलाती है।

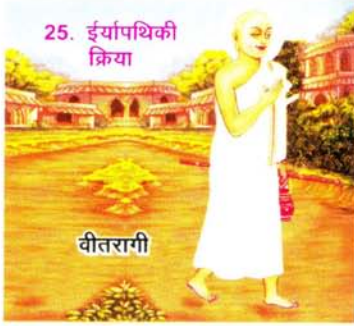


23. **प्रायोगिकी क्रिया** :- मन - वचन - काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में लगाना । जैसे असावधान होकर पापकारी भाषा बोलना, गमनागमन करना इत्यादि।

24. **सामुदानिकी क्रिया** :- समुह में मिलकर जो कार्य किया जाता है उससे होनेवाली क्रिया सामुदानिकी क्रिया कहलाती है। जैसे इकट्ठा होकर नाटक,



सिनेमा देखना, कई लोगों द्वारा मिलकर एक आदमी की पिटाई करना, युद्ध करना इत्यादि



25. **ईर्यापथिकी क्रिया** :- कषाय के अभाव में केवल गमनागमन रूप काय योग के निमित्त से जो क्रिया लगे वह ईर्यापथिकी क्रिया कहलाती हैं । मोह विजेता मुनिवर तथा केवली भगवंत को यह क्रिया लगती है।

इस प्रकार 5 इन्द्रिय, 4 कषाय, 5 अवृत, 3 योग और 25 क्रियाएँ कुल 42 भेद आश्रव के हैं

### \* आश्रव के 20 भेद:-

एक दूसरी विवक्षा के अनुसार बीस प्रकार का आश्रव कहा गया है। उसका विवेचन इस प्रकार है -

- \* 1-5 :- 1. मिथ्यात्व 2. अविरति 3. प्रमाद 4. कषाय 5. योग
- \* 6-10 पाँच अवृत - 6. प्राणातिपात 7. मृषावाद 8. अदत्तादान 9. मैथुन 10. परिग्रह
- \* 11-15 पाँच इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्ति
- \* 16 - 18 मन, वचन, काया रूप योगों की अशुभ प्रवृत्ति
- \* 19 भण्डोपकरण वस्तुओं को अयतना से लेना और आयतना से रखना
- \* 20 कुसाश्रव - कुसंगति करना



# \* जैन आचार मीमांसा \*

\* मार्गानुसारी जीवन



## ✽ मार्गानुसारी जीवन ✽

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र वस्तुतः मोक्ष का मार्ग, मोक्ष का साधन है। उस मार्ग की और अग्रसर होनेवाला, उसका अनुसरण करनेवाला, उसे जीने के लिए सहाय रूप बननेवाला जीवन मार्गानुसारी जीवन कहलाता है।

आचार्य हरिभद्रसूरिजी ने धर्मबिंदु ग्रंथ में तथा कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य के योगशास्त्र में मार्गानुसारी जीवन के 35 गुण बताये हैं। इन गुणों को सरलता पूर्वक याद करने के लिए इन्हें हम चार विभागों में विभक्त करते हैं।

1. जीवन में करने योग्य 11 कर्तव्य
2. 8 दोषों का त्याग
3. 8 गुणों का आदर
4. 8 साधना

### 1. ✽ जीवन में करने योग्य 11 कर्तव्य ✽

#### ✽ न्याय संपन्न वैभव :

गृहस्थ जीवन निर्वाह करने के लिए न्याय और नीतिपूर्वक धन का उपार्जन करें। जिस स्वामी के आश्रित अपनी आजीविका चलती हो उसके प्रति द्रोह करना, उसको जान बुझकर हानि पहुँचाना उसकी संपत्ति को हडप लेना, मित्र के प्रति द्रोह करना, विश्वासघात करना, चोरी करना, व्यापारिक रीति - नीति की अवहेलना करना, जुआ - सट्टा करना, अमर्यादित मुनाफाखोरी और कालाबाजारी और निंदनीय अनैतिक साधनों का त्याग कर अपने हित वर्ण के अनुसार सदाचार और न्याय नीति से ही उपार्जित धन - वैभव से संपन्न होना चाहिए।



#### ✽ आयोचित व्यय :

गृहस्थ को अपनी आय (कमाई) के अनुसार ही खर्च करना चाहिए। आय से अधिक धर्म को भूलकर अनुचित खर्च न करना यह "उचित खर्च" नाम दूसरा कर्तव्य है। कमाई के चार भागों में से एक भाग आश्रितों के भरण - पोषण में, दूसरा भाग व्यापार में, तीसरा भाग धर्मकार्यों और उपयोग में और चौथा भाग भंडार (बचत खाते) में रखना चाहिए।



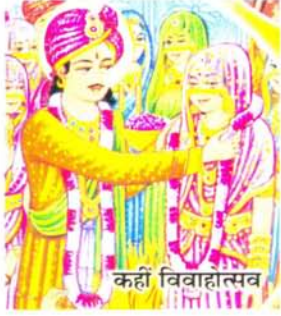
पैसा का उपयोग धर्म के कार्यों में अधिक उपार्जित धन को पुण्य करने में सद्व्यय करना।

## \* प्रसिद्ध देशाचार का पालक :

अपनी मान मर्यादा के अनुरूप उचित वेश - भूषा, भोजन, भाषा आदि धारण करें। अत्याधिक तडकीले - भडकीले, अंगों का प्रदर्शन हो तथा देखनेवालों को मोह व विकार भाव पैदा हो, ऐसे वस्त्रों को कभी नहीं पहनना चाहिए।



## \* समानकुल और शीलवाले किंतु भिन्नगोत्रीय के साथ विवाह संबंध :



कहीं विवाहात्मव

पिता, दादा आदि पूर्वजों की वंश परंपरा खानदानी हो, मदिरा, मांस, दुर्व्यसनों के त्याग रूपी शील - सदाचार भी समान हो, किंतु भिन्न गोत्रीय के साथ आचार संपन्न परिवार में ही विवाह संबंध करना चाहिए।

## \* सदगृहस्थ के रहने का स्थान :

जो मकान अधिक द्वारवाला, ज्यादा ऊँचा, एकदम खुला, चोर - डाकुओं के भय से युक्त न हो तथा अच्छे पडोसी हो ऐसे मकान में सदगृहस्थ को रहना चाहिए।



## \* अजीर्ण के समय भोजन छोड़ देना :



पहले किया हुआ भोजन जब तक हजम न हो तब तक नया भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अजीर्ण समस्त रोगों का मूल है।

## \* समय पर पथ्य भोजन करना

भूख लगने पर आसक्ति रहित, संतुलित एवं सात्विक अपनी प्रकृति, रुचि एवं खुराक के अनुसार उचित मात्रा में भोजन करना चाहिए। भक्ष्य - अभक्ष्य का भी विवेक रखें। तामसी, विकारोत्पादक एवं उत्तेजक पदार्थों का सर्वथा त्याग करना चाहिए।



पर्याप्त भोजन से स्वास्थ्य अक्षय रहता है।

## \* माता - पिता का पूजक

उत्तम पुरुष वहीं माना जाता है जो माता - पिता को नमस्कार करता हो, उनको परलोक हितकारी धर्मनुष्ठान में लगाता हो, उनका सत्कार सम्मान करता हो, उनको पहले भोजन करवाकर फिर स्वयं भोजन करता हो तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करता हो।



## \* पोष्य का पोषण करना :

सद्गृहस्थ का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने आश्रित रहे हुए पारिवारिक सदस्य माता - पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्री, नौकर आदि का पालन पोषण करें। जो गृहस्थ इस प्राथमिक जिम्मेदारी को भलीभांति नहीं निभाता है वह सद्गृहस्थ नहीं कहा जा सकता और न ऐसा व्यक्ति धर्म का योग्य अधिकारी हो सकता है।



## \* अतिथि आदि का सत्कार :



साधु - साध्वी, साधर्मिक, दीन -

दुखियों की यथायोग्य सेवा सत्कार करना। अतिथि उसे कहते हैं - जिसके आने की तिथि निश्चित न हो, जिनको धर्म करने के लिए कोई निश्चित तिथि विशेष न हो, जिनका जीवन हमेशा धर्ममय हो। ऐसे उत्कृष्ट अतिथि निर्ग्रन्थ साधु - साधवियों को आहार - पानी, औषधि आदि उचित रूप से भक्ति करना गृहस्थ का धर्म है। साथ ही दीन - दुखी एवं अनाथ पशुओं की अनुकंपा बुद्धि से दान देना, उनकी सेवा करना सद्गृहस्थ का आचार है।

## \* वृत्तस्थ ज्ञानियों का पूजक :

सद्गृहस्थ आचार संपन्न ज्ञानीजनों का पूजक होता है। अनाचार के त्यागी एवं सम्यक् आचार के पालक को वृत्तस्थ कहते हैं, ऐसे सदाचारी ज्ञानवृद्धों की पूजा करना, उनकी सेवा करना, उसको आसन प्रदान करना, उनके सम्मान में खड़े हो जाना आदि ज्ञानियों एवं अनुभवियों को आदर देना चाहिए। ज्ञानियों की भक्ति करने से ज्ञान में वृद्धि होती है और हिता-हित की पहचान होती है।



## 2. \* 8 दोषों का त्याग \*

### \* अवर्णवादी न होना :

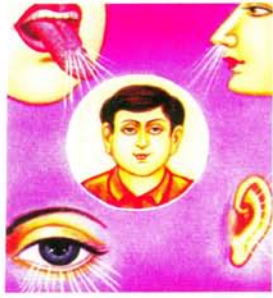
अवर्णवाद का अर्थ है निंदा। सद्गृहस्थ को, किसी की भी निंदा नहीं करनी चाहिए और न सुनना चाहिए। दूसरों की निंदा करने से मन में घृणा, द्वेष, ईर्ष्या वैर - विरोध आदि बढ़ते हैं। प्रेम भंग होता है। व्यक्ति नीच गोत्र का भी बंध करता है।

### \* निन्ध प्रवृत्ति का त्याग :

जिस प्रकार वाणी से निंदा नहीं करनी चाहिए उसी प्रकार शरीर और इन्द्रियों से निन्ध प्रवृत्ति का आचरण भी नहीं करना चाहिए। धर्म, देश, जाति एवं कुल से गर्हित, जुआ,



चोरी, मांस भक्षण, मंदिरा, पान, विश्वासघात, परस्त्रीगमन, झुठा आरोप आदि निंदित कार्य में भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। निन्द्य प्रवृत्ति से यश, बल एवं आरोग्यादि का नाश होता है। इन प्रवृत्तियों से कुविकल्प व दुहर्यान होने से भयंकर तामस संस्कार का कर्म बंध और दुर्गति का आमंत्रण मिलता है।



### \* इन्द्रिय समूह को वश करने के तत्पर :

इन्द्रियों को अयोग्य स्थान की ओर जाने से रोकना। उन पर अंकुश रखना।

### \* षट् अन्तरंग शत्रुओं के त्याग में उद्यत :

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष का मत्सर ये छः आत्मा के अनेक शत्रु हैं। इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। इनकी आधीनता में धन, पूर्व संचित पुण्य की हानि होती है तथा पाप का बंध होता है।



### \* अभिनिवेश त्याग :

न्यायसंगत न होने पर भी दूसरों को नीचा दिखाने के लिए जो कार्य किया जाता है वह अभिनिवेश हैं। हठाग्रहिता मिथ्या पकड, दराग्रह आदि अभिनिवेश की पर्याय है। जो सच्चा है वह मेरा है। यह सदाग्रह है, किंतु मेरा है वह सच्चा है यह पकड दराग्रह है। इससे विवाद, विरोध, क्लेश आदि उत्पन्न होता है। सत्य से वंचित रहना पडता है।

### \* परस्पर अवधित रूप में तीनों वर्गों की साधना :

जीवन में धर्म, अर्थ और काम तीन पुरुषार्थों को समान रूप से करना चाहिए हैं। जिससे अभ्युदय और मोक्ष सुख की सिद्धि हो वह धर्म है, जिससे लौकिक गृहस्थाश्रम के सर्व प्रयोजन सिद्धि होते हैं वह अर्थ है अभिमान से उत्पन्न समस्त इन्द्रिय सुखो से संबंधित रस युक्त प्रीति काम है। सद्गृहस्थ को इन तीनों वर्गों की साधना इस प्रकार से करनी चाहिए कि, वे एक दूसरे के लिए परस्पर बाधक न बनें।



### \* उपद्रवपूर्ण स्थान का त्याग :

जो स्थान स्व चक्र, पर चक्र आदि के कारण अशांतिग्रस्त हो, जहां दंगे - फसाद भडक रहे हो, जहाँ दुभिक्षि दुष्काल या महामारी का प्रकोप हो, जहाँ अपने विरोध में जन आंदोलन हो, गृहस्थ को उस स्थान, गाँव या नगर को छोड देना चाहिए। क्योंकि वहाँ सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का अनुकूल वातावरण नहीं रहता।

### \* निषिद्ध देश - काल एवं चर्या का त्याग :

जैसे धर्म विरुद्ध प्रवृत्ति का त्याग आवश्यक है वैसे ही व्यवहार शुद्धि एवं भविष्य

में पाप से बचने के लिए देश, काल तथा समाज से विरुद्ध प्रवृत्ति का त्याग भी आवश्यक हैं जैसे एक सज्जन व्यक्ति का वेश्या या बदमाशों के मुहल्ले से बार बार





आना - जाना, आधी रात तक घुमना - फिरना, स्वयं बदमाश न होते हुए भी बदमाशों की संगति करना इत्यादि जो परम्पराएं शास्त्र विरुद्ध हैं उन्हें ग्रहण न करें, यह सद्ग्रहस्थ का कर्तव्य है अन्यथा कलंक आदि की संभावना है।

### 3. \* 8 गुणों का आदर \*

#### \* पाप भीरु :

दुःख के कारण रूप पाप कर्मों से डरने वाला पापभीरु कहलाता है।

#### \* लज्जावान :

अकार्य करते समय यदि लज्जा का अनुभव हो तो व्यक्ति गलत रास्ते पर जाने से रुक जाता है। सत्कार्य की कभी इच्छा न होने पर भी कभी व्यक्ति शर्म से सत्कार्य प्रवृत्ति में जुड़ जाता है।

#### \* सौम्यता :

जिसके मुख - मण्डल से शांति झलकती है वह सौम्य कहलाता है। गुणों का असर आकृति पर होता है। जिसके दिल में दया है, सद्भाव है, वाणी में मधुरता है, उसकी मुखाकृति क्रूर नहीं हो सकती। उसके चेहरे पर शांति और प्रसन्नता झलकती है। चेहरे की निर्दोष मुस्कान और प्रसन्नमुद्रा दूसरों के दिल में भी स्नेह, सद्भाव और सहानुभूति पैदा करती है। अतएव सद्ग्रहस्थ को सौम्य होना चाहिए।



#### \* लोकप्रियता :

सद्ग्रहस्थ का आचार - व्यवहार इस प्रकार का होना चाहिए जिससे वह जनता को प्रिय और विश्वसनीय लगे। विनय, नम्रता, सेवा, सरलता, शील, सदाचार आदि गुणों के द्वारा वह स्वयं आदरणीय बनता है और अपने धर्म को भी जनता में आदरणीय बनाता है। धर्माधिकार के लिए वह योग्य पात्र होता है।

#### \* दीर्घदर्शी :

किसी भी कार्य को करने से पहले उसके परिणाम को भलीभांति सोच विचारकर गंभीरतापूर्वक निर्णय लेने वाला सद्ग्रहस्थ दीर्घदर्शी कहलाता है।

#### \* बलाबल का ज्ञाता :

सद्ग्रहस्थ को अपनी अथवा दूसरों की द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शक्ति जानकर तथा अपनी निर्बलता-सबलता का विचार करके कोई भी कार्य प्रारंभ करना चाहिए। दूसरों की देखा देखी करके शक्ति के बाहर का काम करना दुःखदायी है। व्यापार हो या व्यवसाय, सामाजिक रिवाज हो या कौटुम्बिक आचार हो, सर्वत्र अपनी शक्ति को तोलकर आचरण करना चाहिए।

#### \* विशेषज्ञ :

सार, असार, कार्य - अकार्य, वाच्य - आवाच्य, लाभ - हानी, सुख - दुःख, स्व और पर आदि का विवेक करना तथा नए नए आत्महितकारी ज्ञान प्राप्त करना विशेषज्ञता है।



#### \* गुण का पक्षपाती :

सद्गृहस्थ गुणों का पक्षपाती होता है। गुणीजन जब भी उसके संपर्क में आए वह उनके साथ सौजन्य, दाक्षिण्य, औदार्य का व्यवहार करें। समय समय पर उनका बहुमान करें, उन्हें प्रतिष्ठा दे, उनको प्रोत्साहित करें, उनके कार्यों में सहायक बनें।

#### 4. \* 8 साधना \*

#### \* कृतज्ञता :

देव-गुरु, माता - पिता आदि किसी का भी उपकार नहीं भूलना चाहिए। उनके उपकारों का स्मरण करते हुए यथाशक्ति उनका बदला चुकाने को तत्पर रहना चाहिए।

#### \* परोपकार करने में तत्पर :



यथाशक्य दूसरों का निस्वार्थ भाव से उपकार करना। व्यक्ति को केवल अपने ही स्वार्थ में रचाभचा नहीं रहना चाहिए। स्वार्थ तो प्राणिमात्र में विद्यमान है। पशु - पक्षी भी अपने स्वार्थ साधन में लीन रहते हैं। मानव की यही विशेषता है कि वह स्वयं की धर्म - अर्थ - काम - मोक्ष साधना के साथ अन्यो की साधना में भी सहायक बन सकता है। परोपकार में तत्पर मनुष्य सभी के नेत्रों में अमृतांजन के समान होता है।

#### \* दयालुता :

दुःखी जीवों का दुःख दूर करने की अभिलाषा दया कहलाती है। व्यक्ति को जैसे अपने प्राण प्रिय है, वैसे ही सभी जीवों को भी अपने प्राण प्रिय है। जिसका हृदय करुणा, दया कोमलता से ग्रहस्त है वही व्यक्ति धर्म का आचरण कर सकता है। हृदय को कोमल रखते हुए जहाँ तक हो सके, तन - मन धन से दूसरों पर दया करते रहना चाहिए।



#### दान

## \* सदाचारी के साथ संगति :

संसार में संगमात्र रोग है, दुःख का कारण है किंतु सत्संग इस रोग को मिटाने के लिए औषधि है। अर्थात् सज्जनों की संगति दोष रूप नहीं है वह इहलोक और परलोक के हितकारी है। नीतिकारों ने कहा है - यदि तुम सज्जन पुरुषों की संगति करोगे तो तुम्हारा भविष्य सुधर जाएगा। अतः दुर्जनों की संगति से बचना और सज्जनों की संगति करना गृहस्थ का सदाचार है।



## \* धर्मश्रवण :

सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह प्रतिदिन धर्म का श्रवण करता रहे। जो धर्म श्रवण में रुचि रखता है वह अवश्य ही पाप भीरु होता है। वह पाप प्रवृत्तियों और निन्दनीय व्यवहारों से बचता रहता है। धर्म - श्रवण करने से कल्याण मार्ग का बोध होता है और मानसिक अशांति दूर होती है। संसार के ताप से संतप्त प्राणियों को धर्म - श्रवण शांति प्रदान करता है, व्याकुलता को दूर करता है, चित्त को स्थिर बनाता है, और उत्तरोत्तर सद्गुणों की प्राप्ति कराता है। प्रतिदिन धर्मश्रवण करनेवाला गृहस्थ इहलोक - परलोक को सुधारने का अभिलाषी होता है। धर्माभिमुख होने के लिए यह आवश्यक आचार है।

## \* बुद्धि के आठ गुण \*

व्यवहार और धर्मश्रवण करने के लिए सद्गृहस्थ को बुद्धि के निम्नलिखित आठ गुण आवश्यक है।

**शुश्रूषा, श्रवणं, चैव, ग्रहणं, धारणं, तथा।**

**ऊहोपोहो, थविज्ञानं, तत्वज्ञानं च धी - गुणाः ॥**

\* **शुश्रूषा** : शास्त्रादि, सुनने की अभिलाषा।

\* **श्रवण** : एकाग्रता पूर्वक धर्म सुनना।

\* **ग्रहण** : सुनते हुए अर्थ को समझना।

\* **धारण** : समझे हुए अर्थ को याद रखना विस्मृत नहीं करना।

\* **ऊह** : सुनी हुई बात पर अनुकूल तर्क - विर्तक द्वारा विचार करना।

\* **अपोह** : सुनी हुई बात का प्रतिकूल तर्कों द्वारा परीक्षण करना कि यह बात कहाँ तक सत्य है।

\* **अर्थविज्ञान** : अनुकूल, प्रतिकूल तर्कों से पदार्थ का निश्चय करना कि यह सत्य है या असत्य।

\* **तत्वज्ञान** : जब पदार्थ का निर्णय हो जाय तब उसके आधार पर सिद्धांत निर्णय, तात्पर्य निर्णय, तत्व निर्णय इत्यादि करना।

जो गृहस्थ बुद्धि के इन आठ गुणों से संपन्न होता है वह अकल्याण मार्ग में कभी भी प्रवृत्ति नहीं कर सकता। वह असदाचार से दूर रहकर सदाचार में ही प्रवृत्ति करेगा।

**\* संपत्ति के अनुसार वेशधारण :**

वेश से व्यक्तित्व की पहचान होती है। सद्गृहस्थ को अपनी संपत्ति, स्थिति, वय, वैभव, देश, काल और कुलाचार को ध्यान में रखकर वस्त्र अलंकार आदि धारण करना चाहिए। उक्त मर्यादाओं को ध्यान में न रखने से लोक में उपहास का पात्र होना पड़ता है। आर्थिक स्थिति ठीक होने पर भी कंजूसी के कारण फटे - पुराने, मैले कपड़े धारण करना अपनी हंसी कराना ही है। इसी तरह वैभव बनाने के लिए चटकीले - भडकीले वस्त्र अलंकार आदि धारण करना भी अनुचित है। विवेकवान सद्गृहस्थ के लिए अपनी वेशभूषा सात्विक, स्वच्छ एवं सुरुचि पूर्ण रखनी चाहिए।

**\* शिष्टाचार प्रशंसक :**

शिष्ट पुरुषों के आचार का प्रशंसक रहना। शिष्टपुरुषों के आचार यह हैं 1. लोक में निंदा हो ऐसा कार्य न करना। 2. दीन दुःखियों की सहायता करना 3. उपकारी के उपकारों को न भूला 4. निंदा त्याग 5. दूसरों की प्रार्थना को भंग नहीं करना 6. गुण - प्रशंसा 7. आपत्ति में धैर्य 8. संपत्ति में नम्रता 9. अवसरोचित हित - मित - प्रिय वचन 10. सत्यप्रतिज्ञा 11. आयोचित व्यय 12. सत्कार्य का आग्रह 13. बहुनिद्रा, विषयकषाय विकथादि प्रमादों का त्याग 14. औचित्य पालन आदि शिष्टपुरुषों के आचार हैं। शिष्टपुरुषों की प्रशंसा करने से व्यक्ति अपने जीवन में भी उनके संस्कार को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार धार्मिक जीवन के प्रारंभ में मार्गानुसारिका के 35 गुणों से जीवन ओतप्रोत बनना आवश्यक है क्योंकि हमारा लक्ष्य श्रावक धर्म का पालन करते हुए संसार त्यागकर साधु जीवन जीने का है, वह इन गुणों के अभाव में प्राप्त नहीं हो सकता है।



# \* जैन कर्म मीमांसा \*

- \* ज्ञानावरणीय कर्म
- \* दर्शनावरणीय कर्म
- \* वेदनीय कर्म



## \* ज्ञानावरणीय कर्म \*

ज्ञानावरणीय कर्म यानि आत्मा के ज्ञान गुण को ढंकने वाले कर्म पुद्गल का समूह । जो कर्म आत्मा के विशेष बोध को रोकता है अर्थात् जिसके कारण आत्मा सहज रूप से ज्ञान की प्रप्ति नहीं कर पाती वह ज्ञानावरणीय कर्म है। यह कर्म आँखों पर कपडे की पट्टी के समान है। जैसे आँख पर कपडे की पट्टी के बांध देने से वस्तु देखी नहीं जा सकती । उसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म के कारण जगत के पदार्थों को वह सम्यक् रूप से नहीं जान पाता।



यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवरण करता है, पर उसे नष्ट नहीं करता। सभी जीवों

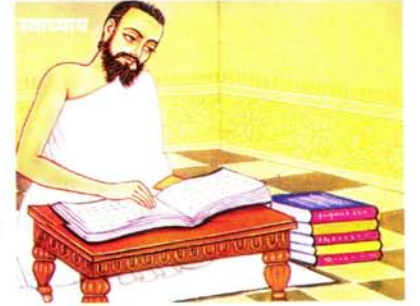
में ज्ञान का अस्तित्व तो रहा हुआ है ही । आत्मा के ज्ञान पर कितना ही आवरण क्यो न आ जाए फिर भी अक्षर के अनंतवें भाग जितना ज्ञान हमेशा आवरण रहित रहता है। जैसे काली घटाओं से आकाश मंडल ढक जाने पर भी दिन रात का भेद जाना जा सके इतना सूर्य का प्रकाश तो रहता ही है। उसी प्रकार प्रगाढ ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने पर भी आत्मा जड पदार्थों से अलग रह सके - अपना स्वरूप कायम रख सके, उतनी चेतना में उतना ज्ञान तो उसका अवश्य ही अनावृत रहता है।

### \* ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच उत्तर प्रकृतियाँ \*



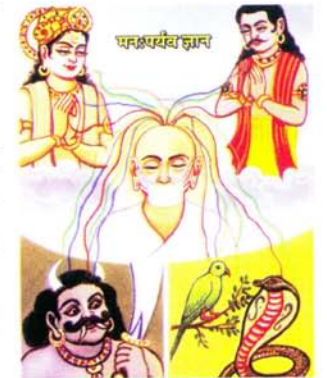
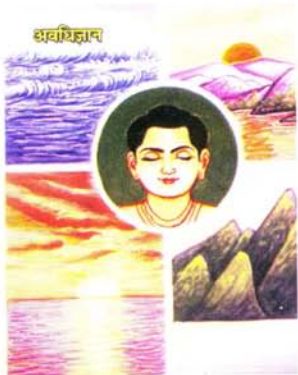
1. **मतिज्ञानावरणीय** : पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है, वह मतिज्ञान हैं। उसे रोकनेवाला कर्म मतिज्ञानावरणीय कर्म हैं

2. **श्रुतज्ञानावरणीय** : शास्त्र - श्रवण, पठन आदि शब्दों के माध्यम से जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। उसे रोकनेवाला कर्म श्रुतज्ञानावरणीय कर्म है।



3. **अवधिज्ञानावरणीय** : इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा के द्वारा मर्यादित रूपी पदार्थों का जो ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान है । उसे रोकनेवाला कर्म अवधिज्ञानावरणीय कर्म है।

4. **मनःपर्यवज्ञानावरणीय** : ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के वह स्वयं के भी मनोगत भावों को जानना वह मनःपर्यवज्ञान है। उसे रोकनेवाला कर्म मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म है।





5. **केवलज्ञानावरणीय** : चार प्रकार के घाती कर्म के क्षय होने से सर्व काल के सर्व द्रव्यों का पर्याय सहित जो ज्ञान आत्मा को होता है वह केवलज्ञान है। उसे रोकनेवाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कर्म है।

**\* ज्ञानावरणीय कर्म बंध के कारण \***

**\* प्रदोष** : ज्ञान, ज्ञानी एवं ज्ञान के साधनों के प्रतिकूल आचरण करना अर्थात् ज्ञान के उपकरण पेन, पुस्तक, ग्रंथ अखबार आदि का दुरुपयोग करना, विनयरहित पढना, पुस्तक जमीन पर रखना, उपेक्षापूर्वक पैर लगाना, थुंका लगाना, मस्तिष्क के नीचे रखना, किताबें जलाना तथा मोक्ष के कारण भूत तत्वज्ञान को सुनकर भी उनकी प्रशंसा न करना।

**\* निन्हव** : ज्ञान एवं ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाना, ज्ञानी का उपकार स्वीकार न करना, अमुक व्यक्ति के पास पढकर भी मैंने इनसे नहीं पढा अथवा अमुक विषय

को जानते हुए भी मैं नहीं जानता तथा अरिहंत भगवान द्वारा प्ररूपित तत्व स्वरूप के विपरित प्ररुपणा करना, इस प्रकार के अपलाप को निन्हव कहते हैं।



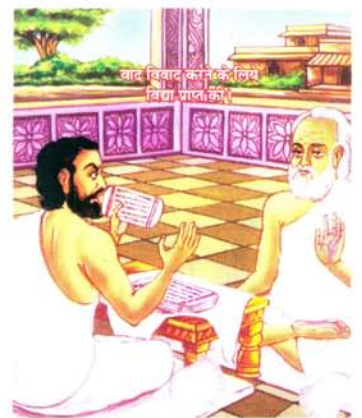
**\* मात्सर्य** : ज्ञानियों और ज्ञान के साधनों पर द्वेष या अरुचि भाव रखना।

**\* अंतराय** : ज्ञानाभ्यास में रुकावट (विघ्न) डालना, ज्ञान के साधनों को छिपा देना, विद्यार्थियों को विद्या, भोजन, वस्त्र, स्थान आदि का लाभ होता हो तो उसे न होने देना, पढाई छुडाकर उनसे अन्य काम करवाना आदि।



**\* आसादन** : दूसरा कोई ज्ञान दे रहा हो, तत्वज्ञान सिखा रहा हो तो उसे वाणी या संकेत से रोक देना अथवा यह कह देना कि यह तो कुछ सीखा ही नहीं सकता, मंदबुद्धि है, इसे पढाने से व्यर्थ में समय बर्बाद करना है।

**\* उपघात** : विद्वानों के साथ मिथ्याग्रह युक्त व्यर्थ विसंवाद (विवाद) करना अथवा स्वार्थवश सत्य को असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना।



## \* ज्ञानावरणीय कर्म के निवारण के उपाय \*



\* ज्ञान को विनय और बहुमान से पढ़ें, प्रतिदिन पढ़ने पर याद न हो तो भी निराश हुए बिना माषतुष मुनि की तरह सतत पढ़ते रहें।

\* ज्ञान के साधनों को सम्मान - बहुमान करें।

\* अपने पास जो ज्ञान है, उसे दूसरों को देने में कंजूसी न करें।



\* ज्ञान आराधकों (अभिलाषियों) की अनुकूलता का ख्याल रखें।

\* ज्ञान भंडार, आदि का निर्माण करायें।

\* कार्तिक मास की सुदी पंचमी (ज्ञान पंचमी) को उपवास तप करके "नमो णाणस्स" मंत्र का जप करने से भी ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट होते हैं। कुष्ट रोगी वरदत्तकुमार और गूंगी गुणमंजरी ने इसी ज्ञान पंचमी के तप - जप से अपने सर्व रोगों को नष्ट किया और सुंदर एवं निर्मल क्षयोपक्षमिक बने। अन्ततः दोनों ने मोक्ष - सुख को प्राप्त किया।

## \* दर्शनावरणीय कर्म \*

जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण अर्थात् सामान्य ज्ञान को आवृत्त करता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। दर्शनावरणीय कर्म को द्वारपाल की उपमा दी गई है। जिस प्रकार राजा के दर्शन के लिए उत्सुक व्यक्ति को द्वारपाल रोक देता है, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति पर पर्दा डालकर उसे प्रकट होने से रोकता है और पदार्थों की सामान्य अनुभूति भी नहीं होने देता है।



दर्शनावरणीय कर्म परिचय

यद्यपि ज्ञान और दर्शन दोनों ही आत्मा के गुण हैं तथापि उनमें थोड़ा सा अंतर है। सोचने, समझने के विशेष बोध को ज्ञान और अनुभव रूप सामान्य बोध को दर्शन कहते हैं। उदाहरण रूप एक घड़ी है। "यह कुछ

है" - मात्र इतना अनुभव करना दर्शन है। तथा उसके आकार, प्रकार, रंग, मूल्य आदि बातों की जानकारी करना ज्ञान है।



## \* दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियाँ \*

1. **चक्षु दर्शनावरणीय** :- जिसके उदय से चक्षु (नेत्र, नयन) द्वारा होनेवाले पदार्थों के सामान्य बोध का आवरण हो।
2. **अचक्षु दर्शनावरणीय** :- जिसके उदय से चक्षु के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों और मन के द्वारा होनेवाले सामान्य बोध का आवरण हो।
3. **अवधि दर्शनावरणीय** :- जिसके उदय से इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा की रूपी द्रव्यों का साक्षात् सामान्य अनुभव करने की शक्ति का आवरण है।



4. **केवलदर्शनावरणीय** :- जिसके उदय से जगत के समस्त रूपी - अरूपी पदार्थों का सामान्य बोध न हो।

5. **निद्रा दर्शनावरणीय** :- अल्प निद्रा, जिसके उदय से जीव सुख से जाग सके।

6. **निद्रा - निद्रा** :- गाढ निद्रा, जिसके उदय से जीव कष्ट से जाग सके।

7. **प्रचला** :- जिसके उदय से खडे - खडे या बैठे - बैठे नींद आए।

8. **प्रचला -प्रचला** :- जिसके उदय से रास्ते में चलते हुए भी नींद आए।

9. **स्त्यानगृद्धि (थीणद्धि)** :- जिसके उदय से जीव दिन में

सोचा हुआ कार्य नींद में करके आवें। अर्थात् जिस निद्रा के उदय में प्रथम संघयणी व्यक्ति वासुदेव का आधा बल पा लेता है, वह सत्यानर्द्धि निद्रा है। आगम में आता है कि एक बार कोई हाथी किसी मुनि के पीछे पड गया, इससे मुनि हाथी पर क्रोधित हो गये। वे सत्यानर्द्धि निद्रा वाले थे, रात में नींद में उठे और अपने सोचे हुए अनुसार हाथी के दोनो दांत, सूंड पकडकर उसे पछाड डाला। मृत - हाथी को उपाश्रय के बाहर डालकर पुनः



भीतर आकर सो गये, दूसरे दिन जब गुरु महाराज को पता चला कि यह लहू लुहान कैसे, तब उनको मालुम पडा कि यह साधु थीणार्द्धि वाले साधु है। फिर गुरु ने शास्त्र युक्त विधि की।



## \* दर्शनावरणीय कर्म के बंध के कारण \*

1. सम्यग् दृष्टि की निंदा करना अथवा उनके प्रति अकृतज्ञ होना।



2. मिथ्या मान्यताओं तथा मिथ्यात्व पोषक तत्वों का प्रतिपादन करना।

3. शुद्ध दृष्टिकोण की उपलब्धि में बाधक बनना या दूसरों को विपरीत दिशा में ले जाना।

4. सम्यग्दृष्टि का समुचित विनय एवं बहुमान नहीं करना।

5. सम्यग्दृष्टि पर द्वेष रखना या उनसे ईर्ष्या करना।

6. सम्यग्दृष्टि के साथ मिथ्याग्रहपूर्वक वाद - विवाद करना।

7. अंधे, बहरे, गूंगे, लुले - लंगडे विकलांग आदि व्यक्तियों का तिरस्कार करना, उनकी यथा शक्ति सेवा - सहायता न करना। क्रोध के वशीभूत होकर किसी की इन्द्रियों का, अंगों का छेदन - भेदन कहना।

8. दूसरों के सुंदर अंगों को देखकर ईर्ष्या करना।

9. इसकी आँखे फूट जाए, यह बहरा - गूंगा हो जाय, इसके हाथ पाँव टूट जाए तो अच्छा, ऐसे दुर्भाव मन में लाना।

10. क्रोध के आवेग में तू अंधा है क्या? तेरी आँखे फूट गई है क्या? क्या तू बहरा गूंगा - है जो सुनता या बोलता नहीं है? तू तो पुरा बुद्धि है, पागल है इत्यादि कटु वचन बोलना।

11. दूसरों को भ्रमित करने की भावना से अंधा, गूंगा, बहरा होने का अभिनय करना या नकल उतारना

12. जीभ, आंख आदि इन्द्रियों का दुरुपयोग करना।

## \* दर्शनावरणीय कर्म के निवारण के उपाय \*

1. जहाँ अंधे, गूंगे, पागल आदि दिखाई दे, उन्हें सहायता पहुँचाने हेतु तत्पर रहें।

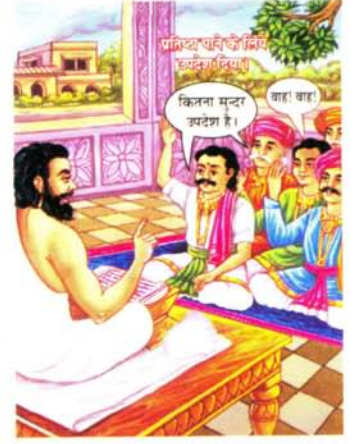
2. ऐसे व्यक्तियों के साथ बोलने में, व्यवहार करने में सावधानी रखें।

3. उनके प्रति दया भाव रखते हुए उन्हें प्रेम या सम्मान देकर हीन भावना से ऊपर उठाने का प्रयास करें।

4. निद्रा आलस्य का परित्याग कर अप्रमत्त बनें।

5. रत्नत्रयी की श्रद्धापूर्वक आराधना या भक्ति करें तथा इन्द्रियों का सदुपयोग करें।

6. धर्म पुरुषार्थ में जागृति और तीव्रता आने पर दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है।



## \* वेदनीय कर्म \*

जो कर्म आत्मा को सुख दुख का अनुभव कराता है या जिस कर्म के द्वारा जीव को सांसारिक इन्द्रिय जन्य सुख - दुख का अनुभव हो वह वेदनीय कर्म कहलाता है। वेदनीय कर्म की तुलना शहद से लिपटी हुई तलवार से की गई है। तलवार के धार पर लगे हुए शहद को चाटने पर पहले तो मधुर लगेगा लेकिन बाद में उसकी तेजधार से जीभ कट जाने से असहाय दुःख भोगना पडता है वैसे ही सातावेदनीय कर्म द्वारा सुख का अनुभव करते हुए इसके परिणाम स्वरूप बाद में दुख का अनुभव करना पडता है।



\* वेदनीय कर्म के 2 भेद हैं :-

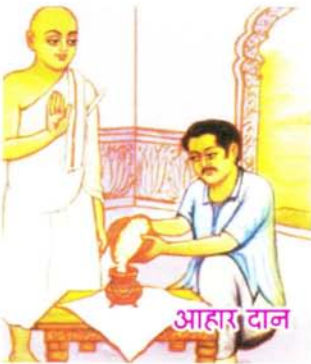
\* सातावेदनीय :- जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रिय जन्य विषय सुख का अनुभव हो अर्थात् जीव को आरोग्य धन विषयोभोग द्वारा शाता का अनुभव हो।



\* आसाता वेदनीय :- जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल विषयों की अप्राप्ति और प्रतिकूल इन्द्रियविषयों की प्रप्ति में दुख का अनुभव होता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं।

\* सातावेदनीय कर्मबंध के कारण :- कर्मग्रंथ में सातावेदनीय के 8 कारण बताए गए हैं।

**गुरुभक्ति** :- माता - पिता, धर्माचार्य, शिक्षागुरु, अध्यापक आदि की सेवा - भक्ति या आदर सत्कार करना। जैसे गणधर गौतमस्वामी ने अपने परम गुरु भगवान महावीर के प्रति असीम श्रद्धा भक्ति रखी थी।





2. **क्षमा** :- कोई व्यक्ति आक्रोश करे या पत्थर, लाठी आदि से मारे, अपशब्द कहे या अपमान करे तब भी क्षमा रखना। मन में प्रतिकार और प्रतिशोध न रखते हुए उसे समभावपूर्वक सहन करना। जैसे भगवान महावीर के कानों में कीलें ठोके गये और चण्डकौशिक सर्प ने पैरों में डस लिया फिर भी भगवान ने क्षमा - समता की आराधना से अपने मन को समाधिस्थ रखा था। चिलाती पुत्र एवं दृढप्रहारी जब समता साधना के पथ पर दृढतापूर्वक आरुढ हो गए तो नगरजनों ने कायोत्सर्ग के समय मुनियों को बहुत ही यातनाएं दी। तब भी वे क्षमाशील रहें।

3. **करुणा** :- दुःखी जीवों पर करुणा करके यथाशक्ति

उनके दुःखों को दूर करने का प्रयास करने से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है। जैसे मेघकुमार पूर्व जन्म में हाथी था। वन में आग लगने पर जल गया, मरकर उसी जंगल में पुनः हाथी बना। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्वजन्म में स्वयं की आग से हुई मौत देखी। कभी ऐसी आग लगे तब अन्य प्राणियों की रक्षा हो इस भावना से उसने विशाल भूभाग साफ किया।



दावाग्नि से भयभीत पशु - पक्षियों को शरण दी। इतना ही नहीं उस समय में खुजलाने के लिए जब उसने पैर उठाया तब उसके पैर के नीचे खाली जगह देख कर एक खरगोश आकर बैठ गया। उसे बचाने के लिए बीस प्रहर (ढाई दिन) तक उसने अपना पैर ऊँचा उठाए रखा था जिससे उसे असह्य कष्ट हुआ था किंतु एक प्राणी



पर अनुकम्पा करने के कारण उसने उस कष्ट को शुभभाव पूर्वक सहन किया। फलतः सातावेदनीय कर्म बांधा और आगामी जन्म में वह श्रेणिक राजा का पुत्र मेघकुमार बन भगवान महावीर के पास दीक्षा अंगीकार की।

4. **व्रतपालन** :- अनेक साधकों ने अणुव्रतों और महाव्रतों का सुचारु रूप से विधिपूर्वक पालन करके सातावेदनीय कर्म बांधा और देवलोक में गये। उदाहरणार्थ :- महाबल राजा ने महाव्रतों का सुचारु रूप से पालन किया, जिसके फलस्वरूप वह सातावेदनीय कर्म बाँधकर देवलोक में गया।

5. **शुभयोग** :- मन - वचन - काया से शुभ योग पूर्वक ध्यान, धर्म - चिंतन, स्वाध्याय प्रतिलेखनादि धर्म क्रियाओं में प्रवृत्ति करने से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है। जैसे वक्कलचीरी को प्रतिलेखन शुभयोगपूर्वक करने से जातिस्मरण ज्ञान हुआ, सातावेदनीय का बंध कर और केवलज्ञान भी प्राप्त किया।

6. **कषाय विजय** :- क्रोध, मान, माया, और लोभ - ये चार कषाय आत्मा के आंतरिक शत्रु हैं, अतः इन्हें उपशांत रखते हुए इन पर विजय पाने का पुरुषार्थ करने से अवंतिसुकुमाल की तरह जीव सातावेदनीय कर्म का बंध करता है।

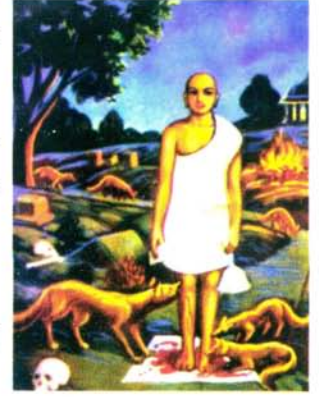
7. **दान** :- सुपात्र को आहार, वस्त्र आदि का दान करना, रोगियों को औषधि देना, जो जीव, भय से व्याकुल हो रहे हैं उन्हें भय से छुड़ाना, विद्यार्थियों को पुस्तकें तथा विद्या का दान करने से सातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

उदाहरणार्थ :- शालिभद्र के जीव संगम ने मुनि को निर्दोष आहार (खीर) वहोराकर सातावेदनीय कर्म बांधा, जिसके परिणामस्वरूप दूसरे भव में वह अपार



सम्पदा का मालिक बना।

अतुल वैभव एवं सुख सुविधाएं मिली तथा उन्हीं सांसारिक सुखों में लुब्ध न होकर वे मोक्ष सुख की आराधना में तल्लीन हो गए।



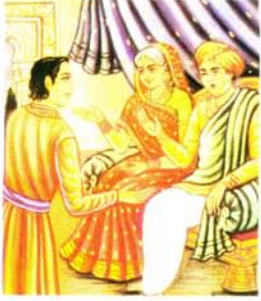
8. **धर्म की दृढता** :- धर्म आचरण में विपदाएं आने पर भी धर्म में शुद्ध आस्था और दृढ निष्ठा रखने से भी आत्मा सातावेदनीय कर्म बांधती है जैसे राजगृही के सुदर्शन सेठ ने बांधा

राजगृह नगर में अर्जुन नामक एक माली था वह अपनी पत्नी बंधुमती के साथ प्रतिदिन यक्ष की प्रतिमा की सेवा - पूजा किया करता । एक दिन बंधुमती की सुंदरता पर मुग्ध छह मनचले पुरुषों ने मौका देखकर अर्जुन को तो रस्सी से मंदिर में ही बांध दिया और उसकी पत्नी बंधुमती के साथ दुराचार करने की कुचेष्टा की । क्रोध में आवेशित अर्जुन ने भावावेश में आकर इष्ट यक्ष को पुकारा। यक्ष उसके शरीर में प्रविष्ट हो गया । अर्जुन ने फटाफट बंधन तोड़ डाले और यक्ष का मुद्गर उठाकर उन दुराचारी पुरुषों पर झपट पडा । कुछ ही देर में बंधुमती सहित छः पुरुषों की हत्या कर डाली । अब क्रोधी यक्षाविष्ट अर्जुन घूम-घूमकर प्रतिदिन छः पुरुष व एक स्त्री - सात प्राणियों की हत्या करने लगा। एक दिन राजगृह में श्रमण भगवान महावीर पधारे। दृढसंकल्पी सुदर्शन श्रावक भगवान के दर्शन करने जाता है। मार्ग में मिलता है अर्जुनमाली ! हाथ में मुद्गर लिए मौत की तरह मारने के लिए झपटता है। सुदर्शन भगवान महावीर को भाव वंदना कर वहीं पर ध्यानस्थ हो जाता है। धर्म पर दृढ आस्था ने चमत्कार दिखाया । अर्जुन स्तंभित होकर दूर ही खडा रहा। यक्ष



अर्जुन का शरीर छोड़कर भाग गया। अर्जुन भूमि पर धड़ाम से गिर गया। उपसर्ग टला जानकर सुदर्शन श्रावक उठता है। उसने अर्जुन को भी उठाया, जगाया और सद्बोध दिया। संक्षेप में, सुदर्शन की धर्म पर दृढ़ आस्था थी। इसी कारण वे भीषण उपसर्ग के समय में भी धर्म से विचलित नहीं हुए। फलतः उन्होंने असातावेदनीय के प्रसंग पर सातावेदनीय कर्म बांधा।

### \* असातावेदनीय कर्म बंध के कारण \*



1. **गुरुजनों की अभक्ति** :- माता - पिता, अध्यापक या धर्म गुरुओं का अनादर, अपमान करना। यथोचित सेवा भक्ति न करना।
2. **अक्षमा** :- छोटी-छोटी बातों पर भी क्रोध, कलह आदि करना, क्षमा धारण नहीं करना।
3. **क्रूरता** :- हिंसा का आचरण करना, दीन - दुःखी, पीडित - रोगी को देखकर भी करुणा / अनुकंपा का भाव न लाना, मन में क्रूरता रखना।



पशुओं पर अधिक बोझ डालकर पीड़ा पहुंचाना

4. **अव्रत** :- व्रत - नियम, त्याग प्रत्याख्यान न करना। अमर्यादित जीवन जीना।



जीवों को क्रूरता पूर्वक पकड़ना और वेदना देना

5. **अयोग - प्रवृत्ति** :- मन - वचन - काया द्वारा अशुभ

प्रवृत्ति करना। अर्थात् मन में हिंसक विचार करना हिंसक कठोर वचनों का प्रयोग करना, काया से हिंसा आदि में प्रवृत्त होना।

6. **कषाय करना** :- क्रोध, मान, माया और लोभ करना।

7. **दानवृत्ति का अभाव** :- देने का भाव न होना, कंजूसी का आचरण करना

8. **धर्म पर दृढ़ता न रखना** :- धर्म से चालायमान होना और श्रद्धा का खण्डित हो जाना।

इस प्रकार असातावेदनीय कर्म दुख का कारण होने से इन्द्रिय विषय का दुःखरूप अनुभव कराता है और प्रतिकूल दुःख के संयोगों को प्राप्त कराता है।

※ साता वेदनीय कर्म के परिणाम (फल) ※

साता वेदनीय कर्म का फलभोग आठ प्रकार से होता है:-

1. कर्ण - प्रिय, मृदु एवं मधुर स्वर अपने - पराये लोगों से सुनने को मिलते हैं।
2. स्व - पर का मनोज्ञ और सुंदर रूप देखने को मिलता है।
3. किसी भी निमित्त से मनोज्ञ सुगन्ध की प्राप्ति होती है।
4. अत्यंत सरस, स्वादिष्ट, मधुर एवं ताजा भोजनादि प्राप्त होता है।
5. मनपसंद, नरम, कोमल, सुखद संवेदना उत्पन्न करने वाले स्पर्श की प्राप्ति होती है।
6. मनोज्ञ मानसिक अनुभूतियाँ, प्रसन्नता एवं चित्त की अनुकूलता आदि मिलती है।
7. प्रिय, मधुर एवं प्रशंसनीय वचन चहुँ ओर से सुनने को मिलते हैं।
8. शरीर की निरोगता, सुख - सुविधा, स्वस्थता एवं सुखद शारीरिक संवेदनाएँ प्राप्त होती है।

※ असाता वेदनीय कर्म के परिणाम (फल) ※

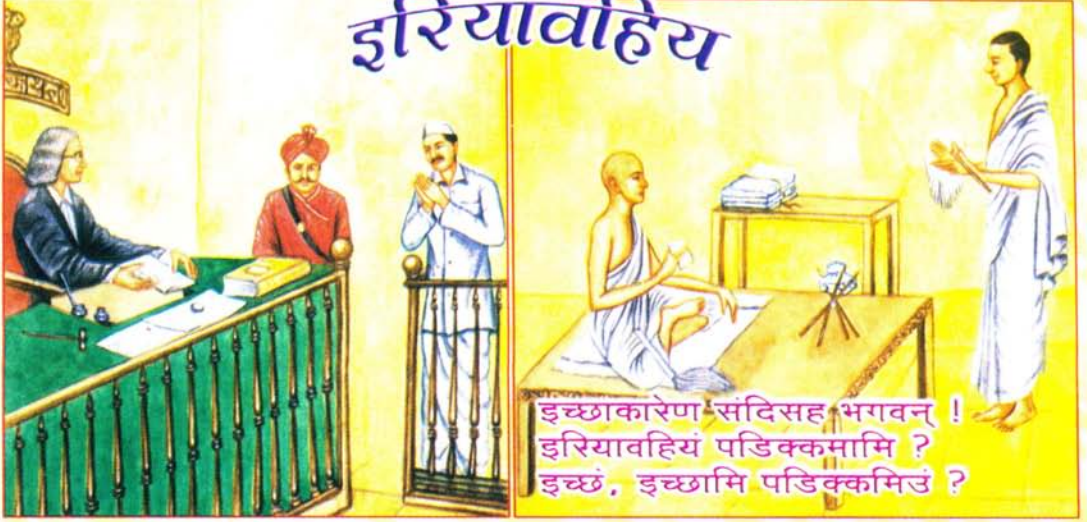
असाता वेदनीय कर्म का फलभोग भी आठ प्रकार से होता है, साता वेदनीय कर्म के विपरीत। इस प्रकार वेदनीय कर्म कुल 16 प्रकार से भोगा जाता है।

## \* सूत्रार्थ \*

- \* इरियावहियं (प्रतिक्रमण) सूत्र
- \* तस्स उत्तरी सूत्र
- \* अन्नत्थ सूत्र
- \* लोगस्स (चतुर्विंशतिस्तव) सूत्र
- \* करेमि भंते (सामायिक सूत्र)
- \* भयवं ! दसण्ण भद्दो (सामायिक तथा पौषध पारणे का पाठ) सूत्र
- \* सामाइय वय जुत्तो (सामायिक पारणा) सूत्र
- \* एयस्स नवमस्स (सामायिक पारणे का पाठ)



# इरियावाहिय



इच्छाकारेण संदिसह भगवन् !  
इरियावहियं पडिक्कमामि ?  
इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं ?



इरियावहियाए  
विराहणाए  
गमणागमणे

## जे मे जीवा विराहिया

- एगिंदिया
- बेइंदिया
- तेइंदिया
- चउरिंदिया
- पंचिंदिया

- पाणक्कमणे
- बीयक्कमणे
- हरियक्कमणे
- ओसा-उत्तिग
- पणग-दगमट्टी
- मक्कडा-संताणा संकमणे

अभिहया



संघाइया



किलामिया



वत्तिया



संघट्टिया



उह्विया



टाणाओ टाणं संकामिया  
जीवियाओ ववरोविया

लेसिया



परियाविया



तस्स मिच्छामि दुक्कडं



## \* इरियावहियं सूत्र \*

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि ? इच्छं।

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए, विराहणाए। गमणागमणे । पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसाउत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे ।

जे मे जीवा विराहिया । एगिंदिया बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया पंचिंदिया।

अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्विया, ठाणाओ-ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं

## \* शब्दार्थ \*

इच्छाकारेण - स्वेच्छा से, इच्छापूर्वक।

भगवन् - हे भगवन्।

पडिक्कमामि - प्रतिक्रमण करूं।

इच्छामि - चाहता हूँ, अन्तः करण की भावना - पूर्वक प्रारंभ करता हूँ। पडिक्कमिउं - प्रतिक्रमण करने को।

इरिया वहियाए - ईर्यापथ - संबंधिनी क्रिया से लगे हुए अतिचार से, मार्ग में चलते समय हुई जीव विराधना का।

विराहणाए - विराधना दोष।

पाण -क्कमणे - प्राणियों को दबाने से।

हरिय-क्कमणे - हरी वनस्पति को दबाने से।

उत्तिंग - चींटियों के बिलों को।

दग मट्टी - पानी - मिट्टी

संकमणे - खूंद व कुचलकर।

मे विराहिया - मुझ से पीड़ित दुःखित हुए हों।

बेइंदिया - दो इंद्रियोंवाले जीव।

चउरिंदिया - चार इंद्रियोंवाले जीव।

अभिहया - पांव से मरे हों, ठोकर से मरे हों।

लेसिया - आपस में अथवा जमीन पर मसले हो।

संघट्टिया - छुआ हो।

किलामिया - थकाया हो।

ठाणाओ ठाणं - एकस्थान से दूसरे स्थान पर।

जीवियाओ ववरोविया - प्राणों से रहित किया हो।

संदिसह - आज्ञा दीजिए (जिससे)।

इरियावहियं - मैं ईर्यापथिकी क्रियाका।

इच्छं - चाहता हूँ, आपकी आज्ञा स्वीकृत करता हूँ।

पडिक्कमिउं - प्रतिक्रमण करने को।

इरिया वहियाए - ईर्यापथ - संबंधिनी क्रिया से लगे हुए अतिचार से, मार्ग में चलते समय हुई जीव विराधना का।

गमणागमणे - आने जाने में।

बीय - क्कमणे - बीजों को दबाने से।

ओसा - ओस की बूंदों को।

पणग - पाँच वर्ण की कोई (नील फूल)।

मक्कडा संताणा - मकड़ी के जाले आदि को।

जे जीवा - जो प्राणी, जो जीव।

एगिंदिया - एक इंद्रियोंवाले जीव।

तेइंदिया - तीन इंद्रियोंवाले जीव।

पंचिंदिया - पाँच इंद्रियोंवाले जीव।

वत्तिया - धूल से ढके हो।

संघाइया - इकट्ठे किये हों, परस्पर शरीर द्वारा टकराये हों।

परियाविया - कष्ट पहुँचाया हो।

उद्विया - भयभीत किया हो

संकामिया - रखे हो। (फिराये हो)

तस्स मिच्छामि दुक्कडं - उन सब अतिचारों का दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हो।

**भावार्थ** - हे भगवन् ! अपनी इच्छा से इर्यायपथिकी - प्रतिक्रमण करने की मुझे आज्ञा दीजिए । “गुरु इसके प्रत्युत्तर में पडिक्रमेह” - “प्रतिक्रमण करो” ऐसा कहे तब शिष्य कहे - मैं चाहता हूँ, आप की यह आज्ञा स्वीकृत करता हूँ। अब मैं मार्ग में चलते समय हुई जीव विराधना का प्रतिक्रमण अंतःकरण की भावनापूर्वक प्रारंभ करता हूँ। आने जाने में किसी प्राणी को दबाकर, बीज को दबाकर, वनस्पति को दबाकर, ओस की बूंदों को, चींटियों के बिलों को पांच रंग की काई (नील - फूल) कच्चा पानी, मिट्टी, कीचड़, तथा मकड़ी के जाले आदि को खूंद या कुचलकर- आते - जाते मैंने जो कोई एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, अथवा पांच इन्द्रिय वाले जीवों को पीड़ित किया हो, चोट पहुँचाई हो, धूल आदि से ढका हो, आपस में अथवा जमीन पर मसला हो, इकट्ठे किये हों अथवा परस्पर शरीर द्वारा टकराये हों, छुआ हो, कष्ट पहुँचाया हो, थकाया हो, भयभीत किया हो, एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो (विशेष क्या, किसी तरह से उनको) प्राणों से रहित किया हो, उन सब अतिचारों का पाप मेरे लिए निष्फल है। अर्थात् जानते अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैंने जो पापकर्म बांधा उसके लिए मैं हृदय से पछताता हूँ, जिससे कि कोमल परिणाम द्वारा पाप कर्म नीरस हो जावे और मुझे उसका फल भोगना न पड़े।

**इस सूत्र द्वारा 18,24,120 मिच्छामि दुक्कडं दिये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं**

|  |                |
|--|----------------|
| चार गति के कुल जीव (नरक 14+ तिर्यच 48+मनुष्य 303+देव 198 × |                |
| अभिहया आदि दस प्रकार                                       | 563 × 10       |
| राग द्वेष के दो प्रकार                                     | 5630 × 2       |
| मन वचन काया के तीन योग से                                  | 11260 × 3      |
| करना, कराना, अनुमोदन इन तीन कारण से                        | 33780 × 3      |
| भूत, वर्तमान और भविष्य तीन काल से                          | 101340 × 3     |
| अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव, गुरु और आत्मा की साक्षी से       | 304020 × 6     |
| मिच्छामि दुक्कडं   | <u>1824120</u> |

## तस्स उत्तरी करणेणं सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्त करणेणं विसोही करणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणद्वाए ठामि काउस्सग्गं।

### \* शब्दार्थ \*

तस्स - उस पाप की।

पायच्छित्त करणेणं - प्रायश्चित्त करने के लिए

विसल्ली करणेणं - शल्य रहित करने के लिए।

कम्माणं - कर्मों को।

काउस्सग्गं - कायोत्सर्ग।

उत्तरी करणेणं - विशेष शुद्धि के लिए।

विसोहीकरणेणं - आत्मा के परिणामों की विशेष शुद्धि करने के लिए

पावाणं - पाप।

निग्घायणद्वाए - नाश करने के लिए।

ठामि - मैं करता हूँ।

**भावार्थ** : ईर्यायपथिकी क्रिया से पाप - मल लगने के कारण आत्मा मलिन हुआ, उसकी शुद्धि मैंने मिच्छामि दुक्कडं द्वारा की है। तो भी आत्मा के परिणाम पूर्ण शुद्ध न होने से वह अधिक निर्मल न हुआ हो तो उसको अधिक निर्मल बनाने के लिए उस पर बार - बार अच्छे संस्कार डालने चाहिए। इसके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। प्रायश्चित्त भी परिणाम की विशुद्धि के सिवाय नहीं हो सकता इसलिए परिणाम विशुद्धि आवश्यक है। परिणाम की विशुद्धता के लिए शल्यों का त्याग करना जरूरी है। शल्यों का त्याग और अन्य सब पाप कर्मों का नाश काउस्सग्ग से ही हो सकता है इसलिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

### \* अन्नत्थ ऊससिएणं सूत्र \*

अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए पित्तमुच्छाए॥ सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं॥ एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहियो हुज्ज मे काउस्सग्गो॥ जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं न पारेमि॥ ताव कायं ठाणेणं मोणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसिरामि॥

### \* शब्दार्थ \*

अन्नत्थ - अधोलिखित अपवादपूर्वक

नीससिएणं - श्वास छोडने से।

छीएणं - छींक आने से।

उड्डुएणं - डकार आने से।

भमलीए - चक्कर आने से।

सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं - सूक्ष्म अंगसंचार होने से।

सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं - सूक्ष्म दृष्टि संचार होने से।

ऊससिएणं - श्वास लेने से।

खासिएणं - खांसी आने से।

जंभाइएणं - जम्भाई आने से।

वाय-निसग्गेणं - अधोवायु छूटने से, अपानवायु सरने से।

पित्त - मुच्छाए - पित्त विकार के कारण मुर्छा आने से।

सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं - सूक्ष्म कफ तथा वायु संचार होने से।

एवमाइएहिं आगारेहिं - इत्यादि आगारों (अपवादों) के प्रकारों से।

अभंगो - अभंग (भग्न न हो)।

अविराहिओ - अखंडित (खंडित न)।

हुज्ज में काउस्सगो - हो मेरा कायोत्सर्ग।

जाव - जहाँ तक, जब तक

अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं - अरिहंत भगवान को नमस्कार करके।

न पारेमि - पूर्ण न करूँ।

ताव कायं- तब तक शरीर को, काया को।

ठाणेणं - स्थिर रखकर।

मोणेणं - मौन रहकर वाणी व्यापार सर्वथा बंद करके।

झाणेणं - ध्यान द्वारा।

अप्पाणं - मेरी (मेरी काया को)।

वोसिरामि-पापक्रिया तजता हूँ। (सर्वथा त्याग करता हूँ)

**भावार्थ** : अब मैं कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करता हूँ, उसमें नीचे लिखे आगारों (अपवादों) के सिवाय दूसरे किसी भी कारण से मैं इस कायोत्सर्ग का भंग नहीं करूंगा। वे आगार हैं - श्वास लेने से, श्वास छोड़ने से, खांसी आने से, छींक आने से, जम्हाई आने से, डकार आने से, अपान वायु संचार होने से, चक्कर आने से, पित्त विकार के कारण मूर्च्छा आने से, सूक्ष्म अंग संचार होने से, सूक्ष्म रीति से शरीर में कफ तथा वायु का संचार होने से, सूक्ष्म दृष्टि संचार (नेत्र - स्फुरण आदि) होने से (ये तथा इनके सदृश्य अन्य क्रियाएं जो स्वयमेव हुआ करती हैं और जिनको रोने से अशांति का संभव है) (इनके सिवाय अग्नि स्पर्श, शरीर छेदन अथवा सम्मुख होता हुआ पंचेन्द्रिय वध, चोर अथवा राजा के कारण, सर्प दंश के भय से) ये कारण उपस्थित होने से जो कार्य व्यापार हो उससे मेरा कायोत्सर्ग भंग न हो, ऐसे ज्ञान तथा सावधानी के साथ खडा रहकर वाणी - व्यापार सर्वथा बंद करता हूँ तथा चित्त को ध्यान में जोड़ता हूँ और जब तक णमो अरिहंताणं यह पद बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूँ तब तक अपनी काया का सर्वथा त्याग करता हूँ।

**\* 19 दोषों का त्याग कर कायोत्सर्ग करना चाहिए। वह इस प्रकार है। \***

1. घोड़े के भांति एक पैर ऊँचा, टेढ़ा रखना, वह घोटक दोष
2. लता के समान शरीर को हिलाए, वह लता दोष
3. मुख्य स्तंभ को टिकाकर खडा रहे, वह स्तंभादि दोष
4. उपर बीम अथवा रोशनदान हो, उससे सिर टिकाकर रखें वह माल दोष
5. बैलगाडी में जिस प्रकार सोते समय अंगूठे को टिकाकरे बैठा जाता है, उस प्रकार पैर रखे, वह उद्धित दोष
6. जंजीर में जिस प्रकार पैर रखे जाते हैं, उस प्रकार पैरों को चौडाकर रखें, वह निगड दोष
7. नग्न भील के समान गुप्तांग पर हाथ रखें वह शबरी दोष
8. घोड़े के चौकड़े के समान रजोहरण (चरवले) की कोर आगे रहे, इस प्रकार हाथ रखे, वह खलिण दोष
9. नव विवाहित वधू के समान मस्तक नीचे झुकाए रखे, वह वधू दोष
10. नाभि के ऊपर तथत घुटने के नीचे लम्बे वस्त्र रखें, वह लंबोत्तर दोष
11. मच्छर के डंक के भय से, अज्ञानता से अथवा लज्जा से हृदय को स्त्री के समान ढंककर रखें वह स्तन दोष
12. शीतादि के भय से साध्वी के समान दोनों कंधे ढंककर रखे अर्थात् समग्र शरीर शरीर आच्छादित रखें, वह संयति दोष



13. आलापक गिनते समय अथवा कायोत्सर्ग की संख्या गिनते समय ऊँगली तथा पलकें चलती रहे वह भूअङ्गुलि दोष
14. कौए के समान इधर - उधर झाँकता रहे, वह वायस दोष
15. पहने हुए वस्त्र पसीने के कारण मलिन हो जाने के भय से कैथ के पेड की तरह छिपाकर रखे, वह कपित्थ दोष
16. यक्षावेशित के समान सिर हिलाए, वह शिरःकंप दोष
17. गूंगे के समान हुं हुं करे, वह मूक दोष
18. आलापक गिनते समय शराबी के समान बडबडाए वह मदिरा दोष तथा
19. बंदर के समान इधर - उधर देखा करे वह प्रेक्ष्य दोष कहलाता है।



लोगस्स उज्जोअगरे,



धम्म-तित्थयरे-



जिणे ।



अरिहते कित्तइस्सं  
चउवीसं पि केवली ॥१॥

## श्री लोगस्स सूत्र



उसभ- -मज्झिअं च वंदे,



सुविहिं च पुप्फदंतं,



कुथुं अं च मल्लिं,



संभव- मभिणदणं च समइं च ।



सीयल- मिज्जंस- वासुपुज्जं च ।



वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।



पउमप्पहं सुपासं,



विमल- मणंतं च जिणे



वंदामि रिट्ठोमिं



जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥



धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥



पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥



एवं मए अभिथुआ, विहुयरय-मला पहीणजर-मरणा । कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।  
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥ आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥६॥



चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहियं पयास-यरा ।



सागर-वर गंभीरा,



सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥७॥

## \* लोगस्स सूत्र \*

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतिथयरे जिणे। अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली । उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदण च सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पह वंदे । सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि । कुंधुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च। वंदामि रिद्धिनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च । एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा। चउवीसंपि जिणवरा, तिथयरा मे पसीयंतु । कित्तिय वंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा। आरुग बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु । चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।

## \* शब्दार्थ \*

लोगस्स - लोक में, चौदह राज लोक में।

धम्मतिथयरे - धर्मरूप तीर्थ स्थापन करने वालों की।

अरिहंते - अरिहंतों की, त्रिलोक पूज्यों की।

चउवीसंपि - चौवीसों।

उसभं च - 1. श्री ऋषभदेव को तथा।

वंदे - वंदन करता हूँ

अभिणंदण - 4. श्री अभिनंदन को। च - तथा।

पउमप्पहं - 6. श्री पद्मप्रभ को।

जिणं च - तथा राग - द्वेष को जीतने वाले।

वंदे - वंदन करता हूँ ।

पुप्फदंतं - श्री पुष्पदंत है उनको।

सिज्जंस - 11. श्री श्रेयांसनाथ को।

विमलं - 13. श्री विमलनाथ को।

जिणं - राग द्वेष को जीतने वाले।

संतिं च - तथा श्री शांतीनाथ को।

कुंधुं - 17. श्री कुंधुनाथ को।

मल्लिं - 19. श्री मल्लिनाथ को।

नमिजिणं च - 21. श्री नमिनाथ जिनेश्वर को तथा

रिद्धिनेमिं - 22. श्री अरिष्टनेमि तथा नेमिनाथ को।

वद्धमाणं च - 24. श्री वर्धमान स्वामी अर्थात् महावीर स्वामी को।

अभिथुआ - नाम पूर्वक स्तुति किये गये।

पहीण - जर - मरणा - जरा तथा मरण से मुक्त।

उज्जोअगरे - उद्योत - प्रकाश करने वालों की।

जिणे - जिनों की, राग - द्वेष को जीतने वालों की

कित्तइस्सं - मैं स्तुति करूंगा। (करता हूँ)

केवली - केवल ज्ञानियों की।

अजिअं - 2. श्री अजितनाथ को

संभवं - 3. श्री संभवनाथ को

सुमइं च - 5. श्री सुमतिनाथ को तथा।

सुपासं - 7. श्री सुपाश्वरनाथ को।

चंदप्पहं - 8. श्री चंद्रप्रभ को।

सुविहिं च - 9. श्री सुविधिनाथ जिनका दूसरा नाम।

सीअल - 10. श्री शीतलनाथ को।

वासुपुज्जं च - 12. श्री वासुपूज्य स्वामी को तथा।

अणंतं च - 14. श्री अनंतनाथ को तथा।

धम्मं - 15. श्री धर्मनाथ को।

वंदामि - मैं वंदन करता हूँ।

अरं च - 18. श्री अरनाथ को तथा।

मुणिसुव्वयं - 20. श्री मुनिसुव्रतस्वामी को।

वंदामि - मैं वंदन करता हूँ।

पासं - 23. श्री पाश्वरनाथ तह - तथा।

एव मए - इस प्रकार मेरे द्वारा।

विहुय-रय-मला - धो डाला कर्म रज का मैल जिन्होंने।

चउवीसं पि - चौवीसों।



जिणवरा - जिनेश्वर देव।

पसीयंतु - प्रसन्न हो।

जे ए - जो ये।

सिद्धा - सिद्ध

समाहिवरं - भावसमाधि।

चंदेसु निम्मलयरा - चंद्रों से अधिक निर्मल, स्वच्छ।

सागर - वर - गंभीरा - श्रेष्ठ सागर अर्थात् स्वयम्भूरमण समुद्र से अधिक गंभीर।

सिद्धा - सिद्धावस्था प्राप्त किये सिद्ध भगवान।

तित्थयरा मे - तीर्थकर मुझ पर।

कित्तिय-वंदिय-महिया- कीर्तन, वंदन और पूजन किये हुए।

लोगस्स उत्तमा - समस्त लोक में उत्तम।

आरुग्ग-बोहि-लाभं - कर्मक्षय तथा जिनधर्म की प्राप्ति को।

उत्तमं दिंतु - श्रेष्ठ उत्तम दें, प्रदान करें।

आइच्चेसु अहियं पयासयरा- सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले

सिद्धि - सिद्धि मम दिसंतु - मुझे प्रदान करें।

**भावार्थ :** चौदह राजलोकों में स्थित संपूर्ण वस्तुओं के स्वरूप को यथार्थ रूप में प्रकाशित करने वाले, धर्म रूप तीर्थ को स्थापन करने वाले, राग - द्वेष के विजेता तथा त्रिलोक पूज्यों ऐसे चौबीस केवल ज्ञानियों की मैं स्तुति करता हूँ ॥1॥

श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदन स्वामी, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्वनाथ, तथा श्री चंद्रप्रभ जिनेश्वरों को मैं वंदन करता हूँ ॥2॥

श्री सुविधिनाथ जिनका दूसरा नाम पुष्पदंत, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्य, श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ तथा श्री शांतिनाथ जिनेश्वरों को मैं वंदन करता हूँ ॥3॥

श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत स्वामी, श्री नमिनाथ श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ तथा श्री वर्धमान (श्री महावीर स्वामी) जिनेश्वरों को मैं वंदन करता हूँ ॥4॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किये गये, कर्मरूपी मल से रहित और (जन्म) जरा एवं मरण से मुक्त चौबीस जिनेश्वर देव तीर्थकर मुझ पर प्रसन्न हों ॥5॥

जो समस्त लोक में उत्तम है और मन, वचन काया से स्तुति किये हुए हैं, वे मेरे कर्मों का क्षय करें, मुझे जिनधर्म की प्राप्ति कराएं तथा उत्तम भाव - समाधि प्रदान करें ॥6॥

चंद्रों से अधिक निर्मल, सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले, स्वयम्भूरमण समुद्र से अधिक गंभीर ऐसे सिद्ध भगवंत मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥7॥

## \* सामायिक (करेमिभंते) सूत्र \*

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि । जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए कायेणं, न करेमि, न कारवेमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

### \* शब्दार्थ \*

करेमि - करता हूँ।

सामाइयं - सामायिक।

जोगं - प्रवृत्ति का व्यापार का।

जाव - जब तक।

पज्जुवासामि - पर्युपासन करता रहूँगा मैं सेवन करता रहूँगा। तिविहेणं - तीन प्रकार के (योग से)

मणेणं - मन से।

काएणं - शरीर से।

न करेमि - न करूँगा

भंते - हे भगवन्।

पडिक्कमामि - मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, मैं निवृत्त होता हूँ। निंदामि - (उसकी) निंदा करता हूँ।

गरिहामि - (और) यहाँ गुरु की साक्षी में विशेष निंदा करता हूँ। अप्पाणं - आत्मा को (उस पाप व्यापार से)।

वोसिरामि - हटाता हूँ। (छोड़ देता हूँ)

भंते - हे भगवन् ! हे पूज्य !

सावज्जं - पापवाली।

पच्चक्खामि - प्रत्याख्यान करता हूँ।

प्रतिज्ञा पूर्वक छोड़ता हूँ

नियमं - इस नियम का।

तिविहेणं - तीन प्रकार के (योग से)

वाया ए - वाणी से।

दुविहं - दो प्रकार से।

न कारवेमि - न कराऊँगा।

तस्स - उस पापवाली प्रवृत्ति का।

निंदामि - (उसकी) निंदा करता हूँ।

अप्पाणं - आत्मा को (उस पाप व्यापार से)।

हटाता हूँ। (छोड़ देता हूँ)

**भावार्थ :** हे पूज्य ! मैं सामायिक व्रत ग्रहण करता हूँ। अतः पाप वाली प्रवृत्ति को प्रतिज्ञा पूर्वक छोड़ देता हूँ। जब तक मैं इस नियम का सेवन (पालन) करता रहूँगा तब तक मन, वाणी और शरीर इन तीन योगों से पाप व्यापार को न करूँगा न कराऊँगा। हे पूज्य ! पूर्वकृत पाप वाली प्रवृत्ति से मैं निवृत्ति होता हूँ, अपने हृदय से उसे बुरा समझकर उसकी निंदा करता हूँ और आप (गुरु) के सामने विशेष रूप से निंदा करता हूँ। अब मैं अपनी आत्मा को पाप क्रिया से हटाता हूँ।

**नोट :** स्थानकवासी परंपरा में मणेणं, वायाए, काएणं की जगह मणसा, वयसा और कायसा शब्द का प्रयोग मिलता है।

## \* सामायिक तथा पौषध पारणे का सूत्र \*

भयवं ! दसण्णभद्दो सुदंसणो थूलिभद्द - वयरो य। सफली कय गिहचाया, साहू एवं विहा हुंति ॥1॥  
 साहुण वंदणेण नासइ पावं, असंकिया भावा। फासुअ - दाणे निज्जर, अभिग्गहो नाणमाइणं ॥2॥  
 छउमत्थो मूढमणो, कित्तिय मित्तंपि संभरइ जीवो। जं च न संभरामि अहं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥3॥  
 जं जं मणेण चित्तियं, असुहं वायाइ भासियं किंचि । असुहं काएण कयं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥4॥  
 सामाइय पोसह संठियस्स, जीवस्स जाइ जो कालो। सो सफलो बोधव्वो, से सो संसार फल हेउ ॥5॥

## \* शब्दार्थ \*

|  |  |
|--|--|
| भयवं - हे भगवन्, पूज्य !               | दसण्णभद्दो - दशार्णभद्र।                   |
| सुदंसणो - सुदर्शन सेठ।                 | थूलिभद्द - स्थूलिभद्र।                     |
| य - और।                                | वयरो - वज्रस्वामिने ।                      |
| सफलिकय - सफल किया है।                  | गिहचाया - घर का त्याग (दीक्षा जिन्होंने)   |
| साहू - साधु ।                          | एवं विहा - इस प्रकार के।                   |
| हुंति - होते हैं।                      | साहुण - साधुओं को।                         |
| वंदणेण - वंदन करने से।                 | नासइ - नष्ट होते हैं।                      |
| पावं - पाप।                            | असंकिया - भावा - शंका रहित भाव, निश्चय से। |
| फासुअ - प्रासुक आहार आदि को।           | दाणे - देने से।                            |
| निज्जर - निर्जरा।                      | अभिग्गहो - अभिग्रह।                        |
| नाणमाइणं - ज्ञानादि गुणों का।          | छउमत्थो - छद्मस्थ घाति कर्म सहित।          |
| मूढमणो - मूढ मन वाले।                  | कित्तिय - कितना।                           |
| मित्तंपि - मात्र भी।                   | संभरई - याद कर सकते हैं।                   |
| जीवो - जीव।                            | जं - जो।                                   |
| च - और।                                | न - नहीं।                                  |
| संभरामि - मैं स्मरण कर सकता हूँ।       | मिच्छामि - मेरा मिथ्या हो।                 |
| दुक्कडं - पाप।                         | तस्स - उसका।                               |
| मणेण - चित्तियं - मन से चिंतन किया हो। | असुहं - अशुभ।                              |
| वायाइ भासियं - वचन से बोला हो।         | किंचि - कुछ भी।                            |
| काएण कयं - शरीर से किया हो।            | असुहं - अशुभ।                              |
| सामाइय - सामायिक में।                  | पोसह - पौषध में।                           |
| (देसावगासिय) - देशावेकाशिक में।        | संठियस्स - रहे हुए।                        |
| जीवस्स - जीव को।                       | जाइ -जाता है, व्यतीत होता है।              |

जो - जो।

कालो - समय।

सो - वह।

सफलो - सफल।

बोधव्वो - जानना चाहिए।

सेसो - बाकी का समय।

संसार - संसार के।

फलहेउ - फल का कारण है।

**भावार्थ :** हे भगवन् ! दशार्णभद्र, सुदर्शन, स्थूलीभद्र और वज्रस्वामी ने घर का त्याग कर (साधु दीक्षा) वास्तव में जीवन सफल किया है - साधु इनके समान होते हैं ॥1॥ ऐसे साधुओं को वंदन करने से निश्चय ही पापकर्म नष्ट होते हैं, शंका रहित भाव की प्राप्ति होती है, मुनि भगवंतों को शुद्ध आहार आदि देने से निर्जरा होती है, तथा ज्ञान दर्शन चारित्र संबंधी अभिग्रह की प्राप्ति होती है ॥2॥ घाति कर्म सहित छद्मस्थ मूढ मन वाला यह जीव किंचित मात्र स्मरण कर सकता है (सब नहीं) अतः जो मुझे स्मरण है उनकी तथा जो स्मरण नहीं हो रहे हैं वे सब मेरे दुष्कृत (पाप) मिथ्या हो अर्थात् उनके लिए मुझे बहुत पश्चाताप हो रहा है ॥3॥ मैंने मन से जो जो अशुभ चिंतन किया हो, वचन से जो जो अशुभ बोला हो तथा काया से जो अशुभ किया हो वह मेरा सब दुष्कृत मिथ्या हो ॥4॥ सामायिक में, पौषध में अथवा देशावगाशिक में जीव का जो समय व्यतीत होता है वह समय सफल समझना चाहिए। बाकी का काल संसार वृद्धि संबंधी फल का हेतु हैं ॥5॥ मैंने सामायिक विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ। दस मन के, दस वचन के, बारह काया के कुल बत्तीस दोषों में से जो कोई मुझे दोष लगा हो उसके लिए मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ।

### \* सामायिक पारने का पाठ \*

एयस्स नवमस्स सामाइय वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं - मण -  
दुप्पणिहाणे, वय दुप्पणिहाणे, काय दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स, सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्टियस्स  
करणया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। (हरिभद्रीयावश्यक, पृष्ठ 813)

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए  
अणुपालियं, न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

### \* शब्दार्थ \*

एयस्स नवमस्स - इस नव में

सामाइय-वयस्स - सामायिक व्रत में

पंच अइयारा - पाँच अतिचार

जाणियव्वा - जानने योग्य है किंतु

न समायरियव्वा - आचरण करने योग्य नहीं है

तंजहा ते - वे इस प्रकार है उनकी

आलोउं - आलोचना करता हूँ

मणदुप्पणिहाणे - मन में बुरे विचार उत्पन्न करना

वयदुप्पणिहाणे - कठोर या पाप जनक वचन बोलना  
आदि

कायदुप्पणिहाणे - बिना देखे पृथ्वी पर बैठना उठना

सामाइयस्स - सामायिक करने का काल

सइ अकरणया - भूल जाना

सामाइयस्स अणवट्टियस्स करणया - सामायिक का समय होने से पहले पार लेना या अनवस्थित रूप से  
सामायिक करना तस्स - उससे होने वाला

मि - मेरा

मिच्छा - मिथ्या (निष्फल) हो

सम्मं काएणं - सम्यक् काया से

न पालियं - पालन न किया हो

न किट्ठियं - कीर्तन न किया हो

आणाए - आज्ञानुसार

तस्स - उससे होने वाला

सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के, इन बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दुक्कडं - पाप

सामाइयं - सामायिक का

न फासियं - स्पर्श न किया हो

न सोहियं - शुद्धतापूर्वक न की हो

न आराहियं - आराधन न किया हो

अणुपालियं न भवइ - पालन न किया हो

मिच्छामि दुक्कडं - मेरा पाप मिथ्या हो

### \* सामाइय - पारण - सुत्तं \*

(सामायिक पारने का सूत्र)

सामाइयवय - जुत्तो, जाव मणे होइ नियम - संजुत्तो।

छिन्नई असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥1॥

सामाइअंमि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।

एण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥2॥

मैने सामायिक विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया,  
विधि में कोई अविधि हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं॥3॥

दस मनके, दस वचनके, बारह काय के कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो मिच्छामि दुक्कडं॥

### \* शब्दार्थ \*

सामाइयवय - जुत्तो - सामायिक व्रत से युक्त।

मणे - मन में।

नियम - संजुत्तो - नियम से युक्त, नियम रखकर।

असुहं - अशुभ।

सामाइय - सामायिक।

सामाइयम्मि - सामायिक।

कए - करने पर।

इव - जैसा।

हवइ - होता है।

एण कारणेणं - इस कारण से, इसलिए।

सामाइयं - सामायिक।

जाव - जहाँ तक।

होई - होता है, करता है।

छिन्नई - काटता है, नाश करता है।

कम्मं - कर्म का।

जत्तिया वारा - जितनी बार।

उ - तो।

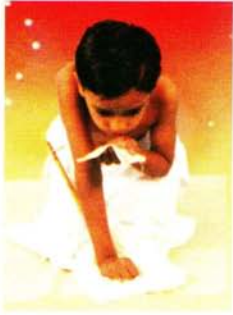
समणो - साधु।

सावओ - श्रावक।

जम्हा - जिस कारण से।

बहुसो - अनेक बार।

कुज्जा - करना चाहिए।



विधि - निश्चित पद्धति शेष स्पष्ट है।

**भावार्थ :-** इस सूत्र द्वारा सामायिक पूर्ण करने में आती है और शेष का अर्थ स्पष्ट है। आगे भी सामायिक करने की भावना हो, इसलिए इसमें सामायिक के लाभ प्रदर्शित किये हैं। साथ ही सामायिक 32 दोषों रहित होकर करना चाहिए, यह बात भी इसमें बतलाई है।

### \* सामायिक के 32 दोष \*

#### मन के दस दोष :-

1. शत्रु को देखकर उसपर द्वेष करना।
2. अविवेक पूर्वक चिंतन करना।
3. सूत्र पाठों के अर्थ का चिंतन न करना।
4. मन में अद्वेग धारण करना।
5. यश की इच्छा करना।
6. विनय न करना।
7. भय करना।
8. व्यापार का चिंतन करना।
9. सामायिक के फल का संदेह करना।
10. तथा निदान-नियाणा करना अर्थात् सांसारिक फल की इच्छा रखकर धर्म क्रिया करना।

#### वचन के दस दोष :-

1. खराब वचन बोलना।
2. हुंकार करना।
3. पाप कार्य का आदेश देना।
4. चुगली करना।
5. कलह करना।
6. क्षेमकुशल पूछना, आगत स्वागत करना।
7. गाली देना।
8. बालक को खेलाना।
9. विकथा करना।
10. तथा हंसी - ठट्ठा करना।

#### काया के बारह दोष :-

1. आसन चपल अस्थिर करना।
2. इधर उधर देखा (देखते रहना) करना।
3. सावद्य कर्म करना।
4. आलस्य मरोड़ना, अंगडाई लेना।
5. अविनय पूर्वक बैठना।
6. दीवाल आदि का सहारा लेकर बैठना।
7. शरीर पर मैल उताराना।
8. खुजलाना।
9. पग पर पग चढाकर बैठना अथवा खडा होना।
10. शरीर को नंगा करना।
11. जंतुओं के उपद्रव से डरकर शरीर को ढांकना।
12. निद्रा लेना।

इस प्रकार 10 मन के, 10 वचन के और 12 काया के कुल मिलाकर 32 दोष हुए। सामायिक में इन दोषों का त्याग करना चाहिए।

## सामायिक में काया के 12 दोष



बार-बार किसी कारण बिना उठकर  
खड़े होना अथवा आसन उठाना ।



चारों ओर देखते रहना ।



पैरों के ऊपर पैर चढाकर बैठना ।



चरवले की डंडी से  
शरीर खुजलाना ।



हथेली में मस्तक  
रखकर सो जाना ।



सारे शरीर को  
वस्त्र से ढंक देना ।



दोनों पैरों को दोनों हाथों से  
बांधकर आलस्य-प्रमाद करना ।



शरीर के मैल को हाथ से घिसकर  
निकालने का प्रयत्न करना ।



बालकों के साथ खेलना  
या झगड़ा करना ।



# \* महापुरुषों की जीवन कथाएँ \*

- \* ढंढणमुनि
- \* साधवी पुष्पचूला
- \* सम्राट संप्रति
- \* महासती द्रौपदी





## \* ढंढणमुनि \*

मगधदेश में धन्यपुर नामक एक श्रेष्ठ गाँव था। वहाँ कृशी पाराशर नाम का धनाढ्य ब्राह्मण रहता था। वह धन के लिए खेती आदि जो भी कार्य करता, उसमें उसे लाभ ही लाभ होता था। “ यह लक्ष्मी का फल है ” ऐसा मानता हुआ वह अपने स्वजनों के साथ आनंद से रहता था। मगध के राजा के आदेशानुसार गाँव के पुरुषों को पाँच सौ हलों से हमेशा राजा का खेत जोतना होता था। जब किसान भोजन के साथ राजा के खेत की जुताई से निवृत्त हो जाते, तब वह ब्राह्मण निर्दयतापूर्वक उसी समय उन भूख से पीड़ित किसानों से अपने खेत में कार्य करवाता था। उस निमित्त से उस ब्राह्मण ने गाढ अंतरायकर्म का बंध किया और अंत में मरकर वह नरक गति को प्राप्त हुआ। वहाँ से च्यवकर विविध तिर्यच योनियों में उत्पन्न होता हुआ और किसी तरह पुण्य का उपार्जन कर उसने देवभव और मनुष्यभव को प्राप्त किया। कालांतर में उसे श्रीकृष्ण वासुदेव के ढंढणकुमार नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया। सर्व कलाओं का अभ्यास कर वह पुत्र क्रमशः यौवनवय को प्राप्त हुआ और अनेक युवतियों के साथ विवाह कर वह कामदेवसुदश भोग विलास करने लगा।

किसी दिन अठारह हजार उत्तम साधुओं से युक्त शासन प्रभावक श्री अरिष्टनेमि भगवान् ग्रामानुग्राम विचरते हुए द्वारका नगरी के रैवत नामक उद्यान में पधारे। उद्यानपालक ने भगवान् के आगमन की सूचना श्री कृष्ण महाराज को दी। ऐसा शुभ समाचार सुनकर श्रीकृष्ण ने उसे उचित दान दिया और यादवों सहित वे नेमिनाथ भगवान् को वन्दनार्थ निकले। फिर भगवान् तथा मुनियों को वंदन करके सभी ने अपने योग्य स्थान ग्रहण किये। जिनेश्वर भगवान ने सर्व साधारण को अपनी वाणी से धर्मदेशना देना प्रारंभ किया। उनकी वाणी को सुनकर ढंढणकुमार सहित अनेक प्राणियों को प्रतिबोध हुआ। ढंढणकुमार ने विषय - सुखों को त्याग कर प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार की। सदा संसार की असारता का चिंतन करते हुए तथा श्रुतज्ञान का अभ्यास करते हुए ढंढणमुनि सर्वज्ञ परमात्मा के साथ विचरने लगे। इस तरह विचरते हुए ढंढणमुनि ने पूर्वभव में जो गाढ अंतरायकर्म का बंध किया था। वह कर्म उदय में आया। कर्म के दोष से ढंढणमुनि जिन साधुओं के साथ भिक्षा लेने जाते, उन्हें भी भिक्षा प्राप्त नहीं होती थी। एक समय साधुओं ने उन्हें भिक्षा नहीं मिलने की बात प्रभु से कही। परमात्मा ने ढंढणमुनि के पूर्व कर्मबंधन का वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर ढंढणमुनि ने परमात्मा के पास अभिग्रह किया कि “**अब से मैं दूसरों की लब्धि से मिला हुआ आहार कदापि ग्रहण नहीं करूँगा।**” इस प्रकार ढंढणमुनि, मानो अमृतरूपी श्रेष्ठ भोजन करते हुए तृप्त हुए हो - इस तरह से दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन श्रीकृष्ण ने भगवान् से पूछा - “हे भगवन् ! इन अठारह हजार साधुओं में सबसे उत्कृष्ट मुनि कौन है ?” प्रभु ने कहा - “निश्चय से सभी उत्कृष्ट हैं, लेकिन इनमें भी दुष्करकारी ढंढणमुनि है, क्योंकि धैर्यता को धारण कर दुःसह उग्र अलाभ परीषह को सम्यक् रूप से सहन करते हुए उनको बहुत समय व्यतीत हो गया है ”। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने ‘वे धन्य है और कृतपुण्य



हैं, जिनकी प्रभु ने स्वयं प्रशंसा की है' ऐसा विचार किया। नगरी में प्रवेश करते ही उन्होंने भाग्य योग से ऊँच नीच घरों में भिक्षार्थ घूमते हुए ढंढणमुनि को देखा। उन्होंने हाथी से उतरकर मुनि का वंदन किया।



श्रीकृष्ण वासुदेव द्वारा मुनि को वंदन करते हुए देखकर एक धनाढ्य सेठ ने विचार किया - 'यह महात्मा धन्य है, जिसे वासुदेव वंदन करते हैं।' श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद विनयपूर्वक सेठ ने मुनि को अपने घर ले जाकर भावपूर्वक केसरिया मोदक से भरे थाल में से उन्हें मोदक वोहराए। मुनि ने प्रभु के पास आकर नमन करके कहा - 'हे भगवंत ! क्या मेरा अंतरायकर्म आज खत्म हो गया है?' प्रभु ने कहा - 'अभी उसका अंश विद्यमान है। तुम्हें जो भोजन मिला है, वह लब्धि श्रीकृष्ण की है, क्योंकि उस सेठ ने तुम्हें कृष्ण द्वारा प्रणाम करते हुए देखकर ही निर्दोष आहार प्रदान किया है।'

प्रभु ने जब ऐसा कहा तो तुरंत ढंढण अणगार आहार के पात्र की झोली लेकर निर्जीव स्थान पर आहार डालने के लिए चले।

अनेक दिनों तक क्षुधा - तृषा को हँसते - हँसते सहन करने वाले ढंढण मुनि द्वारिका के बाहर आये। निर्दोष भूमि देखकर वहाँ खडे रहे और झोली में से लड्डु हाथ में लेकर चूरा करने लगे। ढंढण, लड्डुओं का शी चूरा नहीं कर रहे थे बल्कि इस प्रकार वह मानो अपने कर्म - पिंड का ही चूरा और क्षय कर रहे थे। इस प्रकार उनकी विचारधारा आगे - आगे बढ़ती गई। पाँच सौ पाँच सौ मनुष्यों को भोजन के लिए अंतराय डालने वाले मैंने पूर्व भव मे थोडा ही सोचा था कि मैं भोजन का अंतराय कर रहा हूँ ? मेरे द्वारा बाँधा हुआ अंतराय मैं नहीं भोगूंगा तो कौन भोगेगा ? इस प्रकार धीरे धीरे आत्म परिणति में अग्रसर होते मुनि को अपनी देह के प्रति निर्मोह जाग्रत हुआ और वे शुक्लध्यान में आरूढ हुए। अंतराय कर्म का क्षय करते - करते उन्होंने चारों घाती ऋमों का क्षय किया। इस ओर लड्डुओं का चूरा पूर्ण करके उन्होंने उसे मिट्टी में मिला दिया और दूसरी ओर कर्म का चूरा करके कर्म क्षय करके केवल - लक्ष्मी प्राप्त की। किसी भाग्यशाली को धूल धानिये को कूडा - करकट फेंकते समय स्वर्ण, मोती अथा रत्न प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार श्री कृष्ण के पुत्र ढंढण मुनि को लड्डुओं का चूरा मिट्टी में मिलाते समय मिट्टी धोते समय मोक्षरत्न प्राप्त हुआ। देवों ने देव - दुंदुभि बजाते हुए चारों ओर जय - जयकार का घोष किया।



ढंढणमुनि भगवान के पास आये और वे केवली पर्षदा में बैठे। शुद्ध आहार गवेषणा भी केवलज्ञान का धाम कैसे बन जाता है।

## \* साध्वी पुष्पचूला \*

पुष्पभद्र नगर में पुष्पकेतु नाम का राजा था। उसकी पुष्पवती नाम की रानी थी। उसने पुष्पचूल और पुष्पचूला नाम के युगल को जन्म दिया। पुष्पचूला और पुष्पचूल परस्पर अत्यंत प्रेम से बड़े हुए। दोनों एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे। राजा विचार करने लगा कि



यदि पुत्री पुष्पचूला का विवाह अन्यत्र करूंगा तो दोनों का वियोग हो जाएगा। अतः उसने कपट से राज्यवृद्धों की सम्मति लेकर उनका परस्पर विवाह कर दिया। इस प्रकार के अन्याय से पुष्पवती तिलमिला उठी। वैराग्य आने से उसने दीक्षा ले ली। तीव्र तपश्चर्या करके साध्वी मृत्यु पाकर स्वर्ग में देवता के रूप में उत्पन्न हुई। पुष्पकेतु राजा भी कालांतर में परलोक सिधार गया।

भाई - बहन पतिपत्नी बनकर काल व्यतीत करने लगे। इतने में तो देव (माताजी) ने अवधिज्ञान से देखा

और मन में विचार किया कि ये दोनों पूर्वभव में मेरे पुत्र - पुत्री थे और अब इस प्रकार के अनैतिक वैषयिक पाप से नरक में जाएंगे। अतः उनको सन्मार्ग पर लाने के लिए उसने पुष्पचूला को रात्रि में नरक का स्वप्न दिखाया। उससे भयभीत पुष्पचूला ने सुबह जाकर राजा से बात कही। राजा ने नरक का स्वरूप जानने के लिए अन्य दर्शनों के योगियों को बुलाया। उन्होंने कहा - हे राजन् ! शोक, वियोग, रोग आदि की परवशता ही नरक का दुःख है। पुष्पचूला ने कहा - मैंने जो स्वप्न में देखा है वह ऐसे दुःखों से सर्वथा भिन्न है, वैसे दुःखों का तो अंशमात्र भी यहां नहीं दिखता है। तब जैनाचार्य अर्णिका पुत्र को बुलाकर पूछा। उन्होंने यथावस्थित जैसे दुःख रानी ने स्वप्न में देखे थे। वैसे ही सातों नरक के भयंकर दुःखों का वर्णन किया। रानी ने पूछा " महाराज ! क्या क्या कार्य करने से प्राणी को नरक में जाना पडता है ? गुरु ने उत्तर दिया "एक तो महाआरंभ करने से, दूसरा महापरिग्रह पर मूर्ख रखने से, तीसरा मांस भक्षण करने से और चौथा पंचेन्द्रिय जीव का वध करने से प्राणी नरक मे उत्पन्न होता है।"

अगली रात देव ने देवलोक के सुख का स्वप्न दिखाया। पुष्पचूला ने दूसरे दर्शनकारों को बुलाकर उन्हें देवलोक का स्वरूप पूछा। वह सत्य जान न पायी। पुनः

अर्णिका पुत्र आचार्य को बुलाकर पूछा तो उन्होंने देवलोक का स्वरूप वैसा ही बताया, जैसा कि पुष्पचूला ने स्वप्न में देखा था। बड़ी खुश होकर पूछने लगी कि "स्वर्ग का सुख कैसे पाया जाय ?" गुरु बोले श्रावक अथवा साधू का धर्म पालने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।" रानी यह सुनकर उन पर बड़ी प्रसन्न हुई। अपने पति को कहने लगी "स्वामिन् ! आप आज्ञा दे तो मैं दीक्षा लूं।" रानी पर उसको इतना सारा प्रेम था कि वह उसका वियोग पल भर भी नहीं सह सकता था। लेकिन रानी के बहुत आग्रह पर राजा ने कहा "यदि तू सैदव मेरे घर पर भोजन लेने आवे तो मैं तूझे दीक्षा लेने की अनुमति दूं" यह बात मान्य करने पर राजा ने अर्णिका पुत्राचार्य से बड़े





महोत्सवपूर्वक उसको दीक्षा ग्रहण करवाई। दीक्षा लेने के बाद वह हर रोज एक बार राजा को दर्शन देने जाती थी। इस प्रकार कुछ समय बीतने के बाद वहाँ ज्ञान के उपयोग से अकाल पडने का ज्ञात होते ही आचार्य द्वारा अपने शिष्यों को अन्य देश में विहार करने का कहने पर उन्होंने वहाँ से विहार किया। आचार्य महाराज अकेले ही वहाँ रहे। पुष्पचूला आचार्य महाराज को आहार पानी वगैरह ला देती थी। सुश्रुषा व वैयावच्च (सेवा) करने में बिना ग्लान से तत्पर रहती थी। इस प्रकार वैयावच्च करते रहने में कुछ काल बीतने पर क्षपक श्रेणी में पहुँचते ही उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ फिर भी गुरु की वैयावच्च करने में वह हमेशा तत्पर रहती थी और उनको जो चीज पर रुचि हो वही ले आती थी। एक बार गुरु ने उसको पूछा “भद्रे ! बड़े लम्बे समय से तू मेरे मनचाहे आहार - पानी ले आती हो, तो इसका पता तुझे कैसे चलता है ? तुझे कुछ ज्ञान हुआ है ?

उसने कहा “हे पूज्य ! जो जिसके पास रहते हैं तो सहवास से उनके विचार क्यों नहीं जान सकते ? (मुझे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है - ऐसा बताया नहीं क्योंकि ऐसा ज्ञात होने पर आचार्य उससे आहार - पानी न मंगवाते) एक बार वह बरसते बरसात में आहार - पानी ले आयी। आचार्य ने कहा “ हे कल्याणी ! तू श्रुतसिद्धांत के ज्ञान से आहार - पानी लाने के आचार की ज्ञाता फिर भी बरसते बरसात में आहार - पानी क्यों लाई ? उसने कहा “ जहाँ जहाँ अपकाय अचित वर्षा है उस उस प्रदेश में रहकर आहार लायी हूँ इसलिए यह आहार अशुद्ध नहीं है। गुरु ने पूछा “ तुने अचित प्रदेश कैसे जाना ? उसने उत्तर दिया “ ज्ञान से”। आचार्य ने पूछा “ कौनसे ज्ञान से ? प्रतिपाती (आने के बाद चले जाय) या अप्रतिपाती (आने के बाद चला न जाय) वह बोली “ आपकी कृपा से अप्रतिपाती (केवल) ज्ञान से ज्ञात हुआ। आचार्य महाराज बोल उठे “ अहो ! मैंने केवली की आशातना की है। ” ऐसा कहकर उससे क्षमा - याचना करके पुष्पचूला को पूछा “ मुझे केवलज्ञान होगा या नहीं ? केवली ने कहा “ हाँ, आपको गंगा नदी के पार उतरते ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा।



कुछ समय बाद आचार्य कई लोगों के साथ गंगा नदी पार कर रहे थे। जिस ओर आचार्य बैठे थे, नाव का उस ओर छोर झुकने लगा। बीच में बैठे तो पुरी नाव डूबती देखकर सब लोगों ने उन्हें नदी में धकेल दिया। पूर्वभव में आचार्य द्वारा अपमानित पूर्वभव की स्त्री व्यंतरी बनी थी जो नाव डूबा रही थी। पानी में एक सूली खड़ी की गई होने से नदी में धकेले गये आचार्य पानी में गिरते ही लहलूहान हो गये। फिर भी “हा हा ! मेरे इस खून से अपकाय जीव की विराधना होती है - ऐसा सोचते सोचते उनको वहीं केवलज्ञान उत्पन्न होने से अंतगड केवली होकर मोक्ष गये (केवलज्ञान पाकर कुछ समय में ही मोक्ष जाये तो अंतगड केवली कहा जाता है।) पुष्पचूला केवली पृथ्वी पर विचरकर कई लोगों को बोध व लाभ देकर अंत में सर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारी।

इस पुष्पचूला का गुणों से पवित्र चरित्र सूनकर जो भव्य अपने गुरु के चरणकमल सेवन में तत्पर रहता है, वह शाश्वत स्थान पाता है।

## ✽ सम्राट संपति ✽



सम्राट अशोक के समय की बात है। एक दोपहर के समय साधु सब गोचरी के लिए निकले थे। गोचरी लेकर वे पास लौट रहे थे, तो उनको एक भिखारी मिला। उसने कहा, आपके पास भिक्षा है तो थोड़ा भोजन मुझे दो। मैं भूखा हूँ। भूख से मर रहा हूँ। उस समय साधु ने वात्सल्यभाव से कहा, “भाई ! इस भिक्षा में से हम तुझे कुछ भी नहीं दे सकते क्योंकि उस पर हमारे गुरुदेव का अधिकार है। तू हमारे साथ गुरुदेव के पास चल । उन्हें तू प्रार्थना करना। उनको योग्य लगेगा तो वे तुझे भोजन करायेंगे।

साधु के सरल और स्नेहभरे वचनों पर उस भिखारी को विश्वास बैठा। वह उन साधुओं के पीछे पीछे गया। साधुओं ने गुरुदेव आचार्य श्री आर्यसुहस्ति से बात की। भिखारी ने भी

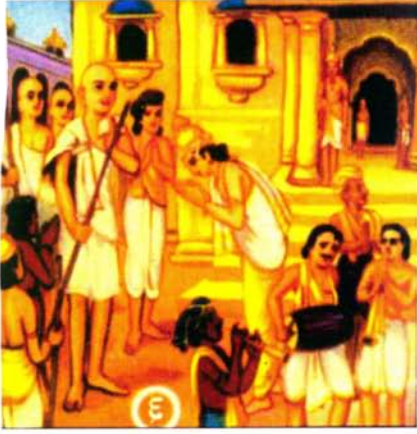
आचार्यदेव को भाव से वंदना की और भोजन की मांग की। आचार्य श्री आर्यसुहस्ति विशिष्ट कोटि के ज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने भिखारी का चेहरा देखा। कुछ पल सोचा, भविष्य में बड़ा धर्मप्रचारक होगा ऐसा जानकर भिखारी को कहा, “महानुभाव ! हम तुझे मात्र भोजन दे ऐसा नहीं परंतु हमारे जैसा तुझको बना भी दे । बोल तुझे बनना है साधू ? भिखारी भूख से व्याकुल था, भूख का मारा मनुष्य क्या करने के लिए तैयार नहीं होता ? भिखारी साधू बनने के लिए तैयार हो गया। उसे तो भोजन से मतलब था और कपड़े भी अच्छे मिलनेवाले थे। भिखारी ने साधू बनने की हाँ कही। दयाभाव से साधुओं ने उसे वेश परिवर्तन कराकर दीक्षा दी और गोचरी के लिए बैठा दिया। इस नये साधू ने पेट भरकर खाया । बड़े लम्बे समय के बाद अच्छा भोजन मिलने से, खाना चाहिए उससे अधिक खाया। रात को उसके पेट में पीड़ा हुई। पीड़ा बढ़ती गयी। प्रतिक्रमण करने के बाद सब साधू उसके पास बैठ गये और नवकार महामंत्र सुनाने लगे। प्रतिक्रमण करने आये हुए श्रावक भी इस नये साधू की सेवा करने लगे।



आचार्य देव स्वयं प्रेम से धर्म सुनाने लगे। यह सब देखकर नया साधू मन में सोचने लगा कि मैं तो पेट भरने के लिए साधू बना था। कल तक तो ये लोग मेरी ओर देखते भी नहीं थे और आज मेरे पैर दबा रहे हैं। और ये आचार्यदेव ! कितनी ज्यादा करुणा है उनमें। मुझे समाधि देने के लिए वे कैसी अच्छी धार्मिक बातें मुझे समझा रहे हैं। यह तो जैन दीक्षा का प्रभाव है। परंतु यदि मैंने सच्चे भाव से दीक्षा ली होती तो...। इस प्रकार साधूधर्म की अनुमोदना करते करते और नवकार मंत्र का श्रवण

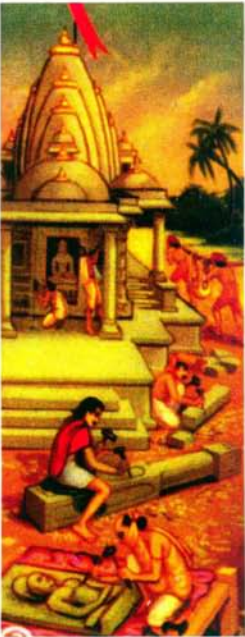
करते करते उसकी मृत्यु हुई और महान अशोक सम्राट के पुत्र कृणाल की रानी की कोख से उसका जन्म हुआ। उसका नाम संप्रति रखा। वयस्क होने पर उन्हें उज्जैन की राजगद्दी मिली और सम्राट संप्रति के रूप में पहचाने जाने लगे।

एक बार वे अपने महल के झरोखे में बैठे थे और राजमार्ग पर आवागमन देख रहे थे। वहाँ उन्होंने कई साधुओं को गुजरते हुए देखा। उनके आगे साधु महाराज थे, वे उन्हें कुछ परिचित लगे। उनके सामने वे अनिमेष देखते रहे अचानक ही उनको पूर्वजन्म की याद ताजा हो गई। उनके समक्ष पूर्व भव की स्मृति लहराने लगी और वे पुकार उठे, “गुरुदेव ! तुरंत ही वे सीढ़ी उतरकर राजमार्ग पर आये और गुरु महाराज के चरणों में सिर झुका दिया और उनको महल में पधारने का आमंत्रण दिया। उनको महल में ले जाकर पीढे पर बिठाकर सम्राट संप्रति ने पूछा “गुरुदेव ! मेरी पहचान पड रही है ?”



“हाँ वत्स ! तुझे पहचाना । तू मेरा शिष्य । तू पूर्वजन्म में मेरा शिष्य था।” गुरुजी ने कहा। संप्रति ने कहा “गुरुदेव ! आपकी कृपा से ही मैं राजा बना हूँ। यह राज्य मुझे आपकी कृपा से ही मिला है। मैं

तो एक भिखारी था। घर घर भीख माँगता था और कहीं से रोटी का एक टुकड़ा भी मिलता नहीं था। तब आपने मुझे दीक्षा दीं भोजन भी कराया। खूब ही वात्सल्य से अपना बना दिया। हे प्रभो ! रात्रि के समय मेरे प्राण निकल रहे थे तब आपने मेरे समीप बैठकर नवकार महामंत्र सुनाया। मेरी



समता और समाधि टिकाने का भरपूर प्रयत्न किया। प्रभु !

मेरा समाधिमरण हुआ और मैं इस राजकुटुम्ब में जन्मा। आपकी कृपा का ही यह सब फल है। “ हे गुरुदेव ! यह राज्य मैं आपको समर्पित करता हूँ। आप इसका स्वीकार करें और मुझे ऋणमुक्त करें।



आर्यसुहस्ति ने संप्रति को कहा : “महानुभाव ! यह तेरा सौजन्य है कि तू तेरा पूरा राज्य मुझे देने के लिए तत्पर हुआ है। परंतु जैन मुनि अपरिग्रही होते हैं। वे अपने पास किसी भी प्रकार की संपत्ति या द्रव्य रखते नहीं है।” सम्राट संप्रति को “जैन साधु संपत्ति रख सकते नहीं है।” इस बात का ज्ञान न था। पूर्व भव में भी उसकी दीक्षा केवल आधे दिन की थी। इस कारण उस भव में भी इस बारे में उसका ज्ञान सीमित था। संप्रति के हृदय में गुरुदेव के प्रति उत्कृष्ट समर्पण भाव छा गया था। यह था कृतज्ञता गुण का आविर्भाव। आचार्य श्री ने सम्राट संप्रति को जैन धर्म का ज्ञाता बनाया। वे महाआराधक और महान प्रभावक बने। सम्राट संप्रति ने अपने जीवनकाल में सवा लाख जिन मंदिर बनवाये और सवा करोड़ जिनमूर्तियाँ भरवायी और अहिंसा का खूब प्रचार कर जीवन सफल किया।

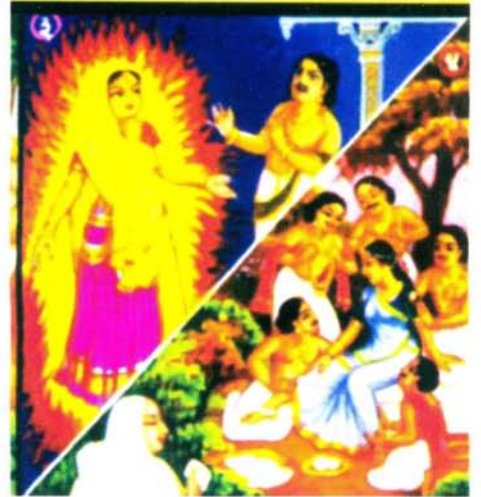
## \* द्रौपदी \*

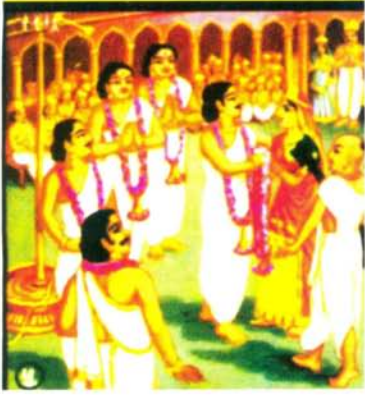
महासती द्रौपदी एक महाश्रमणी थी - इसे किसी भी स्थिति में नकरा नहीं जा सकता। लेकिन पाँच पाँडवों की पत्नी होने के बाद भी उसका पतिव्रता एवं महासती कहलाना कुछ अटपटा और आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। इस रहस्योद्घाटन के लिए हमें द्रौपदी के कुछ पूर्व भवों में झांक कर देखना होगा कि किस प्रकार के निदान के कारण उसके साथ यह घटना घटित हुई।



चम्पापुरी नगरी में सोमदेव नामक ब्राह्मण था। उसको नागश्री नामक स्त्री थी वह सुंदर रसोई करके परिवार को भोजन कराती थी। एक बार उसने तूंबे का साग बनाया परंतु उसे चखते ही मालूम पडा कि यह तो कडुआ है। इस कारण उस साग को एक ओर रख दिया क्योंकि मसाले, तेल वगैरह प्रयुक्त होने के कारण फेंकते हुए उसका जी न चला। परिवार के लिए दूसरा साग बना डाला। इतने में श्री धर्मरुचि साधू 'धर्मलाभ' कहकर पधारे। वे यहाँ आये थे। नागश्री यति की द्वेषी थी। उसने एक ओर रखा कडवी तूंबी का साग इस महाराज को गोचरी में दे दिया। वह लेकर श्री धर्मरुचि महाराज अपने गुरु श्री धर्मघोष के पास आये। वहाँ उसके लाये हुए तूंबी के आहार देखकर गुरु ने कहा, यह तूंबे का फल अति कडुआ है, इससे यह साग प्राणहारक है इसलिए इसे कोई निरवद्यभूमि में

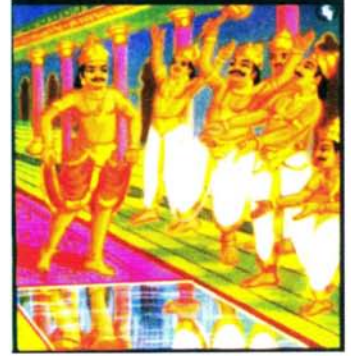
गाड दो (त्याग दो)। गुरु का ऐसा आदेश सुनकर शिष्य उद्यान में गया। वहाँ साग का एक बिन्दू भूमि पर गिर गया। उससे इकट्ठी हुई सब चींटियाँ मर गईं। यह देखकर शिष्य को बड़ी करुणा उत्पन्न हुई और सोचा कि यह साग भूमि में गाडूंगा तो जीवों की हानि होगी, इससे मैं ही उसका भक्षण करूँ ऐसा सोचकर स्वयं ने वह कडुआ साग खा लिया और पंचपरमेष्ठि के ध्यान में लीन हो गये। इस उत्तम ध्यान के कारण वह मृत्यु पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने। कालानुसार जिसने कडवी तूंबी का साग दिया था वह नागश्री मरकर छठे नरक में गयी, वहाँ से मत्स्य होकर फिर सातवीं नरक में गयी और आगे भी नरक में गयी इस प्रकार सात बार नरक गमन और मत्स्य के भव हुए। अपने कर्मों का भुगतान करते हुए नागश्री के जीव ने चंपानगरी के सेठ सागरदत्त के यहाँ पुत्री के रूप में जन्म लिया। उसका नाम सुकुमालिका रखा गया। इस भव में भी उसके पूर्व भव के पाप कर्मों ने उसका पीछा नहीं छोडा। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका विवाह श्रेष्ठी पुत्र जिनदत्त के साथ हुआ। मगर उसके देह की उष्णता एवं देह का स्पर्श तलवार के समान तीक्ष्ण होने के कारण जिनदत्त ने पत्नी धर्म से उसका तिरस्कार कर दिया। पति से पदच्युत होने पर उसने हताश होकर दीक्षा अंगीकार कर ली। सुकुमालिका साध्वी बन तो गई। मगर स्वभाव से बड़ी अविवेकी, मनमानी करने वाली और जिद्दी प्रकृति की थी। उसने अपनी गुरुणीजी की आज्ञा के विरुद्ध नगर के बाहर खुले उद्यान में सूर्य - आतापना लेने का निश्चय किया। उस अवसर पर उसने देवदत्ता





नामक एक गणिका को पाँच पुरुषों के साथ काम - क्रीडा में रत देखा तो उसके मन में भी कामवासना भडक उठी। वह मन ही मन उस वेश्या के भाग्य की सराहना करने लगी। उसी समय उसने निदान किया कि मेरे इस भव की तपस्या का कुछ सुफल मिले तो मैं भी अगले भव में पाँच पुरुषों के साथ सांसारिक भोगों की प्राप्ति करूँ। तत्पश्चात् आठ माह तक संलेखना करके वह सौधर्म देवलोक में नौ पत्योपम के आयुष्यवाती देवी हुई। वहाँ से पांचाल देश में कंपिलपुर के राजा द्रुपद के यहाँ पुत्री के रूप में जन्म लिया। राजा द्रुपद की अंगजात होने के कारण उसका नाम द्रौपदी रखा गया। युवावस्था को प्राप्त होने पर राजा द्रुपद ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर की रचना की। पाँचों पांडव भी स्वयंवर में आमंत्रित थे। अर्जुन ने अपने अचूक निशाने से स्वयंवर में विजय प्राप्त की। द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला पहनाई, मगर उसके पूर्व भव के निदान स्वरूप वरमाला पाँचों पांडवों के गले में पडी प्रतीत हुई। फलस्वरूप वह पाँचों पांडवों की पत्नी कहलाई।

हस्तिनापुर के राजा युधिष्ठिर ने नूतन सभा का निर्माण करवाया, जो उस समय अत्यंत भव्य थी वैसी दूसरी सभा नहीं थी। इस भव्य सभा का निरीक्षण करते हुए कौरवों का ज्येष्ठ दुर्योधन अज्ञानता पूर्वक जलस्थान को थलस्थान समझकर उसमें गिर पडा। "अंधे का पुत्र अंधा होता है" द्रौपदी का यह कटाक्ष शब्द दुष्ट प्रकृति के दुर्योधन को तीर सा चुभ गया। इस अपमान का बदला लेने की योजना स्वरूप उसने पाँडवों को घृत क्रीडा के लिए इन्द्रप्रस्थ में आमंत्रित किया। अपने दुष्ट मामा शकुनि के दिव्य पाशों के कारण दुर्योधन की जीत पर जीत होती गई। युधिष्ठिर अपना राजपाट, चारों भाई, पत्नी द्रौपदी एवं अपना सर्वस्व जूए में हार गए। अब वे सब दुर्योधन के अधीन गुलाम थे। अपने अपमान का बदला लेने का अच्छा अवसर जानकर दुर्योधन ने द्रौपदी को अपने दरबार में बुलाया। भरी सभा में उसका अपमान करते हुए दुशासन को उसका चीर हरण करने का आदेश



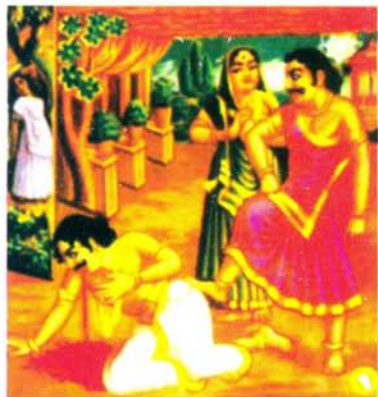
दिया। पतिव्रता सती द्रौपदी ने नवकार महामंत्र की शरण ली और ध्यान में तल्लीन हो गई। दुशासन द्रौपदी की साडी के पल्लों को पकड कर खींचने लगा। महामंत्र के प्रभाव से चीर बढता ही गया। दुशासन साडी को खींचते खींचते थक हार कर भूमि पर गिर पडा। इस अवसर पर महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र से इस शर्मनाक अन्याय में हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया। धृतराष्ट्र के कहने पर दुर्योधन ने पाँडवों को दासता से मुक्त होने के लिए उनको बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास करने का आदेश दिया। पाँडवों ने अपनी माता



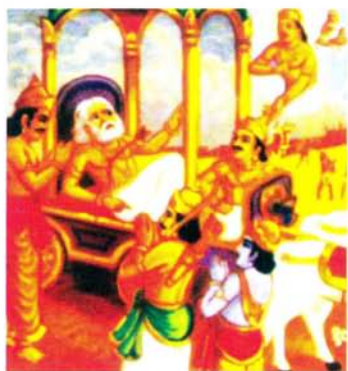
कुन्ती और पत्नी द्रौपदी के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। अनेक कष्टों का सामना करते हुए पांडवों ने बारह वर्ष का वनवास पूरा किया। अब अपने एक वर्ष के अज्ञातवास को पूरा करने के लिए वे विराट नगर के महाराज विराट के यहाँ भेष बदल कर नौकरी करने



लगे। द्रौपदी ने राजमहल में सैरन्धी के नाम से दासी का काम संभाला। राजा विराट का साला कीचक बड़ा ही दुराचारी था। द्रौपदी पर उसकी बुरी नजर थी। नवकार महामंत्र के प्रभाव से हर समय वह बाल - बाल बचती रही। अंत में भीम ने कीचक का वध करके सती के शील की रक्षा की।



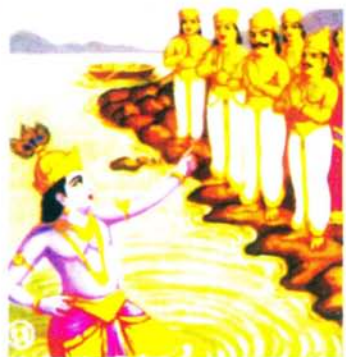
बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा होने पर पाँडवों ने अपने राज - पाट को वापस मांगने के लिए श्रीकृष्ण को अपना दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा। मगर दुर्योधन सूई की नोक - भर भूमि भी उन्हें देने के लिए तैयार नहीं हुआ। अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब दुर्योधन अपनी जिद्द पर अटल रहा तो दोनों के बीच युद्ध हुआ, जिसे "महाभारत का युद्ध" कहा जाता है। युद्ध के मध्य में अश्वत्थामा ने रात



के समय छल - कपट से द्रौपदी के पाँच पुत्रों की हत्या कर दी। द्रौपदी के विलाप को अर्जुन और भीम से देखा नहीं गया। उन्होंने अश्वत्थामा को बंदी बना कर द्रौपदी के सम्मुख उपस्थित किया और बोले - "देवी ! तुम्हारा पुत्र का घातक तुम्हारे सामने हैं। तुम इससे अपने पुत्रों का बदला लेने के लिए स्वतंत्र हो।" क्षमा की मूर्ति सती द्रौपदी बोली - " देव ! मैंने पुत्रों को खो दिया है। पुत्र वियोग कैसा होता है, इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं गुरुपुत्र की घात करके भी अपने पुत्रों को वापस पा नहीं सकती। अतः आपसे अनुरोध है कि आप इसे मुक्त कर दीजिए।" सती द्रौपदी की क्षमा का इससे बढ़कर और उदाहरण क्या हो सकता है ? महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। पाँडवों की विजय हुई। कौरवों का सर्वनाश हो गया। महाराज युधिष्ठिर का

राज्याभिषेक हुआ। एक बार द्रौपदी से नारदजी नाराज हो गये। धातकी खंड की अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर को उकसा कर उन्होंने द्रौपदी का हरण करवाया। सती के सतीत्व पर एक बार फिर संकट के बादल छा गये। सती ने धर्म की शरण ली। नवकार महामंत्र के प्रभाव से राजा पद्मोत्तर उसकी छाया तक को नहीं छू पाया। श्रीकृष्ण की सहायता से पांडवों ने लवण समुद्र पार किया। राजा पद्मोत्तर के साथ घमासान युद्ध हुआ। हार कर राजा पद्मोत्तर ने द्रौपदी को वापस लौटाया। अपने अपराध के लिए श्रीकृष्ण के चरणों में गिरकर उसने क्षमायाचना की।

अमरकंका से लौटते समय पांडवों के नौका न भेजने से श्रीकृष्ण अत्यंत क्रुद्ध हो गये। कुन्ती ने श्रीकृष्ण से क्षमायाचना करके पांडवों के प्राणों की रक्षा की। श्रीकृष्ण ने पांडवों को अभयदान देकर देश - निष्कासित कर दिया। दक्षिण समुद्र के तट पर आकर पांडवों ने दक्षिण मथुरा नामक नगर बसाया और उस पर शासन करने लगे। कुछ काल पश्चात् पांडवों को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम पाण्डुसेन रखा गया। युवावस्था को प्राप्त होने पर पाण्डुसेन राज्य कार्य में सहयोग करने लगा। इधर श्रीकृष्ण वासुदेव के देह विलय की जानकारी होने पर और पुद्गलों की क्षण भंगुरता का ज्ञान होने पर सती द्रौपदी को इस असार संसार से विरक्ति हो गई। उसके वैराग्य को देखकर पांडवों को भी घर - संसार





त्यागने की उत्कण्ठा हो गई। अपने पुत्र पाण्डुसेन का राज्याभिषेक करके सभी ने दीक्षा अंगीकार कर ली।

उग्र तपश्चर्या करके द्रौपदी स्वर्ग में गई और बाकी अब सिद्धाचल पर मुक्त हुए।

प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में निम्नलिखित ग्रंथों का एवं पुस्तकों का आधार लिया है।  
अतः उन उन पुस्तकों के लेखक, संपादक एवं प्रकाशकों के हम सदा ऋणी रहेंगे

1. स्थानांग सूत्र
2. कल्पसूत्र
3. नवतत्व
4. प्रथम कर्मग्रंथ
5. तीर्थकर चारित्र - मुनि श्री जयानंदविजयजी म.सा.
6. तत्वज्ञान प्रवेशिका - आ. श्री कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा.
7. योगशास्त्र - पंन्यास श्री पद्मविजयजी म.सा.
8. जैन धर्म का परिचय - आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.
9. सुशील सद्बोध शतक - आ. श्री जिनोत्तमसूरीश्वरजी म.सा.
10. जिण धम्मो - आ. श्री नानेश
11. कषाय - साध्वी श्री हेमप्रज्ञाश्रीजी म.सा.
12. श्रावक धर्म दर्शन - श्री पुष्करमुनिजी म.सा.
13. कर्म सहिता - साध्वीजी श्री युगलनिधि म.सा.
14. आदर्श संस्कार शिविर  
(भाग - 1,2) - आदिनाथ जैन ट्रस्ट
15. जैन धर्म के चमकते सितारे - वरजीवनदास वाडीलाल शाह
16. प्रतिक्रमण सूत्र  
(सूत्र - चित्र - आलंबन) - आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.

## \* परीक्षा के नियम \*

परीक्षा में भाग लेनेवाले विद्यार्थियों को फॉर्म भरना आवश्यक है।  
कम से कम 20 परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

- \* पाठ्यक्रम : भाग 1 से 6 तक
- \* योग्यता : ज्ञानार्जन का अभिलाषी
- \* परीक्षा का समय : फरवरी, जुलाई
- \* श्रेणी निर्धारण  
विशेष योग्यता : 75% से 100%  
प्रथम श्रेणी : 60% से 74%  
द्वितीय श्रेणी : 46% से 59%  
तृतीय श्रेणी : 35% से 45%
- \* परीक्षा फल (Results) : परीक्षा केन्द्र पर उपलब्ध रहेगा/  
[www.adinathjaintrust.com](http://www.adinathjaintrust.com)
- \* प्रमाण पत्र : संबंधित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण पत्र  
भिजवाए जाएंगे।
  1. Certificate Degree
  2. Diploma Degree





जीवन को जानने की कला है  
**धर्म...**

धर्म विज्ञान है जीवन के मूल स्रोत को जानने का । धर्म मेथडोलॉजी है, विधि है, विज्ञान है, कला है, उसे जानने का जो सच में जीवन है । वह जीवन जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती । वह जीवन जहाँ कोई दुख नहीं है । वह जीवन जहाँ न कोई जन्म है, न कोई अंत । वह जीवन जो सदा है और सदा था और सदा रहेगा । उस जीवन की खोज धर्म है । उसी जीवन का नाम परमात्मा है । परमात्मा समग्र जीवन का इकट्ठा नाम है । ऐसे जीवन को जानने की कला है धर्म । ...

